श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी
वर्ष : ६ अंक : ११
नवम्बर : १९८७
विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाँटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक वसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगाँव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी—दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा—कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र
२१. श्रीराम विलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हंसराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद व्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गड़ोडिया—अपर बाजार (राँची
३४. कुमारी चुक मुक—बेलगाँव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—मधोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति--अमरावती, महारा
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)

इस अंक में

पृष

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ नवम्बर—१९८७ अंक—११

इष्टदेव का हृदय कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएं एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मछली खानेवाले मछली का सिर और दुम नहीं चाहते, वे बीच का मांसल भाग ही पसन्द करते हैं। हमारे शास्त्र ग्रन्थों में जो अति विस्तृत विधि-नियमादि हैं उन्हें काट-छाँटकर आधुनिक युगोपयोगी बनाना होगा।

(२)

पहले बड़े अक्षर साफ-साफ लिखने का अभ्यास हो जाए तो फिर छोटीसी घसीटी लिखावट आसानी से लिखी जा सकती है। इसी प्रकार पहले मन को साकार में स्थिर कर लेने के बाद सरलता से निराकार की धारणा हो सकती है।

(३)

जिस प्रकार भर पेट चारा खा चुकने के बाद गाय निश्चिन्त होकर एक जगह बैठ कर खाया हुआ उगलकर अच्छी तरह चबाती हुई जुगाली करती रहती है, उसी प्रकार, देवस्थान, तीर्थक्षेत्र आदि का दर्शन कर आने के पश्चात् उन स्थानों में मन में जो पवित्र भगवद्भाव उदित हुए थे उनके विषय में एकान्त में बैठकर चिन्तन-मनन करना चाहिए, उन्हीं में डूब जाना चाहिए। दर्शन करके वापस आते ही मन से सब कुछ निकाल बाहर कर, मन को रूप-रसादि विषयों में नहीं लगाना चाहिए। ऐसा करने से उन भगवद्-भावों का मन पर स्थायी परिणाम नहीं हो पाता।

(४)

मन में विवेक-वैराग्य के रहे बिना शास्त्रग्रन्थ पढ़ना वृथा है। विवेक वैराग्य के बिना आध्यात्मिक उन्नति असम्भव है।

सृष्टि-गान

—स्वामी विवेकानन्द

[ऋग्वेद (१०/१९/१—७)के प्रसिद्ध नासदीय सूक्त का स्वामीजी ने अँग्रेजी में The Hymn of Creation' नामक कविता के रूप में अनुवाद किया था। उस अँग्रेजी कविता का यह हिन्दी अनुवाद है।]

तब न सत् था; न असत् ही,
न यह संसार था, न ये आकाश,
इस धुन्ध का आवरण क्या था ? वह भी किसका ?
गहन अन्धकार की गहराइयों में क्या था ?

तब न मरण था, न अमरत्व ही,
रात्रि दिवा से पृथक् नहीं थी,
किन्तु गतिशून्य वह स्पन्दित हुआ था
तब केवल वह था, जिसके परे
कोई अन्य अस्तित्व नहीं, वही चराचर था।

तब तम में छिपकर तम बैठा था,
जैसे जल में जल समाहित हो, पहचाना न जाय,
तब शून्य में जो था, वह तप की गरिमा से मण्डित था।
तब मानस के आदि बीज के रूप मे प्रथम आकांक्षा उगी,
(जिसका साक्षात्कार ऋषियों ने अपने अन्तर में किया;
असत् से सत् जनमा,)
जिसकी प्रकाश-किरण
ऊपर नीचे चारों ओर फैली।

यह महिमा सर्जनमयी हुई
स्वतः सिद्ध सिद्धान्त पर आधारित
और सर्जनशक्ति से स्फुरित।

किसने पथ जाना ! कहाँ अथ है, जहाँ से यह फूटा ?
सर्जन कहाँ से हुआ ?
सृष्टि के बाद ही तो देवों ने अस्तित्व पाया,
अतः उद्भव का ज्ञान किसे प्राप्त है ?

यह सर्जन कहाँ से आया,
यह कैसे ठहरा है, ठहरा भी है या नहीं ?
वह सर्वोच्च आकाशों में बैठा हुआ महाशासक
अपना आदि जानता है या नहीं ? शायद !

हिन्दू-धर्म के सामान्य आधार

स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ

संसार में आज जितने भी सजीव एवं सक्रिय धर्म हैं हिन्दू धर्म उन सब में प्राचीनतम है। वस्तुतः मानव सभ्यता की आयु ही हिन्दू धर्म की आयु है। मानव समाज की श्रेष्ठतम विभूतियों के परम पवित्र सर्वथा शुद्ध, स्वार्थ-निरपेक्ष विशाल अन्तःकरण में हिन्दू धर्म के आधारभूत शाश्वत सत्यों का आविर्भाव हुआ था। इन शाश्वत सत्यों पर ही हिन्दू धर्म के दृढ़ और अक्षय सिद्धान्त स्थिर हैं। यही तथ्य हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के चिरायु होने का रहस्य भी है।

उद्भव की दृष्टि से संसार के धर्मों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(१) वे धर्म, जिनका प्रवर्तन किसी मसीहा, पैगम्बर या अवतार ने किया है। ये धर्म व्यक्तिनिष्ठ हैं।

(२) वह धर्म जिसका प्रवर्तन किसी अवतार आदि ने नहीं किया, अपितु जो सत्य के शाश्वत सिद्धान्तों पर आधारित है। इस सत्य को प्रत्यक्ष अनुभव करने वाले अनेकानेक महापुरुष इस धर्म में उत्पन्न हुए हैं। अपने अनुभव तथा जीवन द्वारा इन महापुरुषों ने धर्म के इन तथ्यों को पुनः पुनः प्रमाणित किया है तथा आज भी कर रहे हैं। इन्हें भी हम अवतार मानते हैं। किन्तु ये इस धर्म के प्रवर्तक नहीं हैं। ये लोग धर्म के शाश्वत तथ्यों की अभिव्यक्ति के अत्यन्त सशक्त, देदीप्यमान आधार मात्र हैं। इसी कारण यह धर्म व्यक्तिनिष्ठ न होकर तत्वनिष्ठ है। कहना न होगा कि मात्र हिन्दू धर्म ही इस श्रेणी का धर्म है।

हिन्दू धर्म पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि, यह एक धर्म न हो कर अनेक धर्मों का समूह मात्र है। हिन्दू धर्म के नाम से परिचित धर्म में सैकड़ों सम्प्रदाय और धर्म सम्मिलित हैं।

हिन्दू धर्म के प्रति भ्रामक धारणा —

गत दो शताब्दियों से हिन्दू नाम से परिचित धर्म, संस्कृति, समाज तथा जाति को दीन-हीन, बर्बर, असभ्य आदि बताने का कुत्सित प्रयास विदेशियों तथा विधर्मियों द्वारा किया जाता रहा है। वास्तव तथा इस प्रकार के अनर्गल प्रचार के परिणाम स्वरूप हिन्दू जाति भी अपने आपको दीन-हीन समझने लगी और सत्य की वज्रदृढ़ नींव पर आधारित अपने महान धर्म को अंधविश्वासी, साम्प्रदायिक तथा अनेक मतों का समूह मानने लगी। सत्य के सर्वथा विपरीत इन भ्रान्तिपूर्ण विचारों के प्रचार एवं प्रभाव के कारण इस महान हिन्दू धर्म के अनुयायी बंधु ही अपनी अपनी उपासना पद्धतियों को ही पृथक धर्म मान कर स्वयं को हिन्दू न कह कर उस सम्प्रदाय विशेष के नाम से संबोधित करने लगे। कोई वैष्णव, कोई शाक्त, कोई शैव, तो कोई आर्यसमाजी कहलाने लगे। किन्तु यदि हम इन सभी सम्प्रदायों के आधारभूत तत्वों को देखें तो हम पायेंगे कि इन सभी सम्प्रदायों के मध्य सनातन हिन्दू धर्म की वही एक सर्व समन्वयकारिणी उदार भाव-सरिता प्रवाहित हो रही है।

जिस हिन्दू धर्म के सामान्य आधारों की हम चर्चा करने जा रहे हैं वह क्या है इस विषय की चर्चा करते हुए युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द ने लाहौर के अपने प्रसिद्ध व्याख्यान में कहा है "हमलोग हिन्दू हैं। मैं हिन्दू शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ। और मैं उनसे कदापि सहमत नहीं हूँ जो इससे कोई बुरा

अर्थ समझते हैं। प्राचीन काल में उस शब्द का अर्थ था सिन्धु नदी के दूसरी ओर बसने वाले लोग।" (विवेकानन्द साहित्य, पंचम खं०, पृ० २५९)

सिन्धु नदी की दूसरी ओर पुण्य भूमि भारत में बसने वाले उन मनीषियों द्वारा आचरित धर्म जिसे वेदों ने गाया, उपनिषदों ने जिसकी घोषणा की, भगवान कृष्ण ने जिसे गीता में गाया, हमारे पुराणों ने जिसे रूपककथाओं में कहा, पुण्यक्षेत्र गया तीर्थ में बोधिवृक्ष के तले तथागत बुद्ध को जिसका बोध हुआ, युवराज वर्द्धमान को कैवल्य ज्ञान प्राप्त करा कर जिसने तीर्थंकर महावीर बना दिया, नानक मोदी को जिसने गुरुनानक देव बना कर हिन्दुओं की एक परम पराक्रमी शाखा सिक्ख सम्प्रदाय का परम आराध्य बना दिया तथा इस पुण्य भूमि भारत में जो भी महिमामय था, वर्तमान में जो भी महिमा मंडित और आध्यात्मिक है, शुद्ध, शाश्वत और पवित्र बनाने वाला तत्व है वही सनातन हिन्दू धर्म है।

ऐसा महिमा मंडित महान हिन्दू धर्म आज इतने अधिक सम्प्रदायों में क्यों विभाजित हो गया है? इन विभिन्न सम्प्रदायों को एक सूत्र में बाँधने वाले कोई सामान्य आधार हैं क्या? ये प्रश्न प्रायः सभी के मन में उठते हैं।

निस्सन्देह, हिन्दूधर्म में ऐसे कतिपय दृढ़ सामान्य आधार हैं जो इस धर्म के सभी सम्प्रदायों को सदियों से मान्य हैं। भिन्न-भिन्न उपासना प्रणालियों का अनुसरण करते हुए भी ये सभी सम्प्रदाय हिन्दू धर्म के ही विभिन्न अंग हैं।

हिन्दू धर्म तत्वनिष्ठा पर आधारित है। व्यक्तिनिष्ठा पर नहीं :—

हमने देखा कि हिन्दू धर्म व्यक्तिनिष्ठ न हो कर तत्त्वनिष्ठ है। यह हमारे धर्म की एक ऐसी विशेषता है जो उसे विश्व के अन्य धर्मों की तुलना में विश्वजनीन धर्म होने की सामर्थ्य प्रदान करती है। तत्त्वनिष्ठ होने के कारण यह धर्म तत्त्व की उपलब्धि के मार्ग के सम्बन्ध में कोई दुराग्रह नहीं करता। व्यक्ति की अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार उसे श्रेय साधन का अपना पथ चयन करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। अपनी-अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार साधना करते हुए धर्मजीवन यापन करने के कारण ही हिन्दू धर्म में इतने अधिक सम्प्रदाय दीख पड़ते हैं। विभिन्नता में एकता की अनुभूति हिन्दू धर्म की अपनी मौलिक विशेषता है।

उपर्युक्त पृष्ठ भूमि को ध्यान में रख कर जब हम हिन्दू धर्म पर विचार करते हैं तब हमें कुछ मूलभूत ऐसे आधार स्पष्ट दीख पड़ते हैं जो कि हिन्दू धर्म की सभी शाखाओं-प्रशाखाओं एवं सम्प्रदायों को मान्य हैं। इतना ही नहीं, ये सामान्य आधार ही हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों की भित्ति हैं। इन्हीं सामान्य आधारों के कारण सभी सम्प्रदाय एक महान हिन्दू धर्म के अंग-प्रत्यंग बन कर हिन्दू के नाम से सम्बोधित होते हैं। इस छोटे से लेख में हम केवल विहंगम दृष्टि से ही उन सामान्य आधारों पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

आत्मा :—हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों में यह तथ्य स्वीकार किया गया है कि मनुष्य केवल अस्थि मांस का समुच्चय मात्र नहीं है। इस अस्थि मांस के पिण्ड को चैतन्य एवं गतिशील करने वाला एक शाश्वत चैतन्य तत्त्व इसके पीछे विद्यमान है। यह चैतन्य तत्त्व ही मनुष्य का सच्चा स्वरूप है। यह चैतन्य तत्त्व ही जीवन शक्ति है तथा इसके कारण ही मनुष्य को जगत और स्वयं का ज्ञान होता है। इस नश्वर देह के पीछे जो अविनाशी देही है, वही आत्मा है। गीता कहती है :—

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥२/३०॥

"हे भारत! यह आत्मा सबके देह में सर्वदा अवध्य है। इसलिए सभी प्राणियों के लिए तू शोक करने योग्य नहीं है।"

हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों ने इस आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी, अक्षय, शुद्ध बुद्ध चैतन्य

ज्ञान स्वरूप माना है। सभी यह स्वीकार करते हैं कि इस आत्मा का नाश नहीं किया जा सकता। आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में गीता कहती है :—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२/२३॥

इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते, आग जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता और हवा सुखा नहीं सकती।

इस प्रकार आत्मा को अविनाशी कहा गया है। वेदों को प्रमाण मानने वाले हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदाय एक स्वर से गीता में प्रतिपादित आत्मा की अमरता के इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। वेदों को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाण न मानने वाले जैन बन्धु भी आत्मा की अमरता को स्वीकार कर विशाल हिन्दू धर्म के अङ्गीभूत हो जाते हैं। प्रसिद्ध जैन दार्शनिक गुणरत्न ने 'चेतना लक्षणो जीवः' इस परिभाषा को स्वीकार किया है।

ईश्वर :—हिन्दू मात्र ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है। स्थान काल आदि के भेद के कारण तथा दार्शनिकों की विचार पद्धति में भेद होने के कारण ईश्वर के स्वरूप, प्रकृति आदि के सम्बन्ध में विचार-वैभिन्य पाया जाता है। यह भिन्नता भी हिन्दू धर्म की अपनी विशेषता है जो उसे इतर धर्मों की तुलना में अति उदार एवं सहिष्णु बनाती है। हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदाय ईश्वर को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, पूर्ण चैतन्य, आनन्द स्वरूप आदि मानते हैं। जो सम्प्रदाय ईश्वर का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मानते वे अपने इष्ट महापुरुषों, तीर्थङ्करों आदि में इन ईश्वरीय गुणों का आरोप कर उन्हीं की पूजा उपासनादि करते हैं। ईश्वर की भक्ति प्राप्त करना, उनका कृपाभाजन बनना, ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर उनके अनुरूप हो जाना आदि विभिन्न भावों से सभी हिन्दू ईश्वर की उपासना करते हैं। गीता स्पष्ट शब्दों में ईश्वर के अस्तित्व की घोषणा करती है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥१८/६१॥

हे अर्जुन ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित रहकर अपनी माया से यंत्रारूढ़ की भांति उन्हें घुमाते हैं।

ईश्वर सम्बन्धी गीता की यह उक्ति हिन्दू धर्म के प्रायः सभी सम्प्रदायों को मान्य है।

संसार :—हिन्दू धर्म तथा दर्शन में संसार शब्द का विशेष अर्थ एवं महत्व है। यद्यपि यह शब्द जन-साधारण में बहु प्रचलित है तथापि इसका अर्थ उस परिमाण में जनसाधारण में सुपरिचित नहीं है।

संसार शब्द संस्कृत के 'सृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है चलना, जाना या प्रगति करना। जो सतत-संसरण शील है, अर्थात अस्थिर, या परिवर्तनशील है वह संसार है। संसार के सम्बन्ध में हिन्दुओं की यह धारणा उनके धर्म और दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इस धारणा से कर्मवाद और पुनर्जन्मवाद का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अतीन्द्रिय सत्य :—हिन्दू धर्म के महान आचार्यों ने अपने अनुभव द्वारा यह उपलब्ध किया कि दृश्यमान इन्द्रियगम्य यह जगत ही सर्वस्व नहीं है। इसके पीछे एक अतीन्द्रिय अद्वितीय तत्त्व विद्यमान है। वही सत्य है। दृश्य जगत उसकी एक झलक मात्र है। इन्द्रियातीत इस सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि यह जो दृश्यमान जगत दीख पड़ता है क्या वह खरगोश के सींग के समान असत्य है? नहीं, हिन्दू धर्म उसे इस प्रकार असत्य नहीं कहता। उसका कहना है यह जगत 'अनित्य' है अर्थात् चिर स्थायी नहीं है। सतत् परिवर्तनशील है, नश्वर है। संसार में जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है उसका विनाश अवश्यम्भावी है।

उपर्युक्त अर्थ में संसार के अनित्य होने के कारण उसके सुख-दुःख भी क्षणिक अर्थात् अस्थायी हैं। इससे यह सिद्धान्त निष्पन्न होता है कि संसार के तथाकथित सुख-भोगों में आसक्त होना उचित नहीं है। इस प्रकार की

भ्रमपूर्ण आसक्ति से हमें सुख के बदले दुःख ही अधिक मिलते हैं। स्थायी सुख की प्राप्ति तो उस अतीन्द्रिय सत्ता की अनुभूति से ही होती है जो कि इस अनित्य संसार का आधार है।

अत: यह संसार हिन्दुओं की दृष्टि में उस अतीन्द्रिय तत्त्व की उपलब्धि के लिए प्राप्त कर्मक्षेत्र है, विषयासक्त हो भोग भोगने का रंगमंच नहीं। इसे कर्मक्षेत्र जान कर सभी व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार उस अतीन्द्रिय तत्त्व की अनुभूति का प्रयत्न करना चाहिए। इस दृष्टि से यह संसार मानो एक विशाल उपासना-गृह है जहाँ अगणित लोग अपनी रुचि के अनुसार साधना कर इष्ट प्राप्ति की चेष्टा कर सकते हैं।

अपवाद छोड़कर हिन्दू धर्म की सभी शाखाओं को संसार के सम्बन्ध में यह मत मान्य है। सभी संसार को कर्मक्षेत्र या धर्मक्षेत्र ही मानते हैं। सभी यह स्वीकार करते हैं कि अनित्य होने के कारण इसमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

धर्म :— धर्म के सम्बन्ध में हिन्दुओं की धारणा संसार के इतर धर्मों से बहुत भिन्न है। इसी कारण यहाँ धर्म के नाम पर कोई कलह नहीं है। सभी हिन्दू यह स्वीकार करते हैं कि धर्म के यथोचित आचरण के द्वारा ही हम जीव में स्थायी शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। धर्माचरण ही हमें मोक्ष तक पहुँचा सकता है। हिन्दुओं के लिए धर्म कोई उपासनाप्रणाली न होकर एक जीवन-पद्धति है। हिन्दू मात्र यह विश्वास करता है कि जहाँ धर्म है वहीं जीवन में विजय प्राप्त होती है। इसलिए हिन्दू जीवनप्रणाली में जीवन का प्रत्येक कार्य धर्म द्वारा ही संचालित तथा नियंत्रित होता है। धर्म ही हिन्दू जीवन-योजना का आधारस्तंभ है। इसीलिए जीवन के सर्वांगीण विकास एवं उन्नति के सभी तत्त्व हिन्दुओं की दृष्टि में धर्म के अन्तर्गत ही आते हैं। इसीलिए हिन्दू धर्म-जीवन जीवन के संतुलित विकास पर जोर देता है। यह धर्म जीवन में अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों की उपलब्धि का मार्ग बताता है। हिन्दू धर्म के सभी पन्थ धर्म के इस स्वरूप को स्वीकार करते हैं।

कर्मवाद :—कर्मवाद का सिद्धान्त हिन्दू धर्म और दर्शन की विश्व को एक अद्वितीय देन है। इस संसार की विचित्रता तथा व्यक्ति-व्यक्ति के अगणित भेदों का रहस्य हमें केवल कर्मवाद के सिद्धान्त से ही प्राप्त होता है। और कोई दर्शन इस भिन्नता और वैचित्र्य का कारण बताने में समर्थ नहीं है। कर्मवाद कहता है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। वर्तमान में हम जो भी हैं वह भूत काल या गत जन्मों में हमारे किये गये कर्मों का ही परिणाम है। अत: भविष्य में भी हम जो होंगे वह हमारे वर्तमान कर्मों का ही परिणाम होगा। इसी श्रृंखलाबद्ध नियम के आधार पर हिन्दू धर्म कहता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है। गीता तो आह्वान के स्वर में इसकी घोषणा करती है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥अ०६

'अपनी आत्मा का अपने आप उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे, क्योंकि मनुष्य स्वयं अपने आपका शत्रु और मित्र है।'

कर्मवाद इस बात को घोषणा करता है कि मनुष्य चाहे तो अपने सद् कर्मों द्वारा 'जीव' से 'शिव' हो सकता है, 'नर' से 'नारायण' हो सकता है। संक्षेप में कर्म-सिद्धान्त मनुष्य के असीम सामर्थ्यशाली स्वरूप पर विश्वास करता है, तथा पुरुषार्थ द्वारा उसे अपने इस असीम सामर्थ्यशाली व्यक्तित्व का अनुभव करने का आह्वान करता है।

हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदाय कर्मवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं।

मोक्ष :—यदि एक शब्द में हिन्दू धर्म का उद्देश्य व्यक्त करना हो तो वह होगा 'मोक्ष'। हिन्दू धर्म के सभी विधि-विधान, उपासना-साधना आदि इसी एक

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हैं। इसकी प्राप्ति ही धर्म-जीवन की पूर्णता है।

हमने यह देखा कि हिन्दू ऋषि-मुनियों ने अपनी महान साधनाओं द्वारा सत्य का साक्षात्कार किया तथा करुणावश लोककल्याणार्थ उस सत्य तथा उसकी उपलब्धि का मार्ग जन साधारण को विभिन्न प्रकार से बताया। उन्होंने हमें बताया कि केवल इन्द्रियगम्य जगत ही सब कुछ नहीं है। इन्द्रियों के परे भी एक तत्व है जो असीम और पूर्ण है। वह तत्व सत् चित् आनन्द स्वरूप है। उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वारा ही मनुष्य पूर्णकाम होकर शाश्वत शान्ति का अधिकारी हो सकता है।

तृष्णा ही हमारे दुःखों का कारण है। तृष्णा से मन में कामना का जन्म होता है। कामना हमें कर्म करने को प्रेरित करती है। कर्मों का फल होता है तथा कर्त्ता उन फलों की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के अनुसार सुख या दुःख के घात-प्रतिघातों को सहते हुए अतृप्त और अशांत रहता है। तृष्णाओं की तृप्ति तथा कामनाओं की पूर्ति असंम्भव है। उनके त्याग के द्वारा ही उनसे मुक्ति मिल सकती है। इस बात को समझ कर जब व्यक्ति धीरे-धीरे तृष्णाओं का त्याग करता जाता है तब उसका मन भी धीरे-धीरे शान्त और एकाग्र होता जाता है। उसकी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होने लगती हैं। चित्त शुद्ध होता जाता है। जन्म जन्मान्तर की साधना से जब साधक का चित्त सर्वथा शुद्ध हो जाता है तब उसे जिस सत् चित् आनन्दस्वरूप तत्व की उपलब्धि होती है वही मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति ही मानव जीवन का लक्ष्य है।

हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदाय मोक्ष को मानव जीवन के लक्ष्य के रूप में स्वीकार करते हैं। कोई उसे मुक्ति कहता है तो कोई आत्मोपलब्धि, कोई कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति कहता है तो कोई निर्वाण। इस उपलब्धि की ओर इंगित करने वाले शब्द भले ही भिन्न-भिन्न हों किन्तु उनका भाव एक है।

नैतिकता ;—नैतिकता हिन्दू धर्म की एक महत्वपूर्ण आधार शिला है। नैतिकता का अर्थ हिन्दुओं के लिए केवल आचारशुद्धि ही नहीं है। विचारों की शुद्धि पर हिन्दू नीतिशास्त्र विशेष बल देते हैं। नैतिकता हिन्दू धर्म रूपी भवन का लौह आधार है। नैतिक नियमों के प्रत्यक्ष आचरण के बिना कोई भी व्यक्ति हिन्दू धर्म का अनुयायी नहीं हो सकता। काम, क्रोधादि मलिन वृत्तियों से मन को सर्वथा मुक्त कर उसे पूर्णतः शुद्ध कर लेना नैतिकता का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में लोक संग्रहार्थ निष्काम कर्म करने का हिन्दू नीतिशास्त्र उपदेश देता है।

सभी हिन्दू-सम्प्रदाय नैतिकता पर आस्था रखते हैं तथा उसे आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला मानते हैं।

इष्टनिष्ठा और समन्वय :—इष्टनिष्ठा और समन्वय हिन्दू धर्म की अपनी महान मौलिक विशेषता है। सामान्य मनुष्य का मन इतना सूक्ष्म और चिन्तनशील नहीं होता कि वह सहसा इन्द्रियातीत तत्व का चिन्तन करने लगे या उसे पकड़ ले। इस तथ्य को ध्यान में रख कर हिन्दू ऋषि मुनियों ने सामान्य साधकों के लिए इष्ट का विधान किया है। इन्द्रियगम्य प्रतीकों के सहारे धीरे-धीरे इन्द्रियातीत तत्व का चिन्तन मनन तथा साक्षात्कार किया जा सकता है। इन प्रतीकों के माध्यम से उस अखंड अद्वयतत्व की ही उपासना की जाती है जिसका कि वे प्रतिनिधित्व करते हैं। वस्तुतः तत्व एक है, अनेकता उसे अभिव्यक्त करने वाले माध्यमों में ही है। श्रीरामकृष्ण देव के शब्दों में 'जल एक है, कोई उसे 'पानी' कहता है, कोई 'वाटर' कहता है तो कोई 'एक्वा'।

अपनी-अपनी रुचि के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए इष्ट देवता या प्रतीक का चयन कर सकता है। अपने चुने हुए इष्ट के प्रति दृढ़ निष्ठा रखकर यथाक्रम साधना करने पर आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। यह हिन्दू शास्त्रों का मत है। इसीलिए विभिन्न देवी देवताओं के रूप में हिन्दू-धर्म ने अगनित प्रतीकों को स्वीकार किया है।

हमारी रुचि के अनुकूल ईश्वर का प्रतीक हमारा इष्ट है। उसके प्रति अटूट श्रद्धा ही इष्ट निष्ठा है।

हिन्दू धर्म का यह इष्ट सिद्धांत अत्यन्त सुचिंतित, मनोवैज्ञानिक तथा उदार है। मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न होने के कारण उसके लिए भिन्न-भिन्न उपासना-पद्धति का होना भी उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए परम आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसका अपना इष्ट श्रेष्ठ एवं सिद्धिदायक है। हिन्दू धर्म किसी के भी इष्ट की निन्दा नहीं करता, कहना न होगा कि उल्टे सभी इष्टों को ईश्वर के प्रतीक के रूप में स्वीकार कर उनमें एक अद्भुत समन्वय तथा आंतरिक ऐक्य देखता है।

गुरु एवं साधुसंग :—गुरु को जितना महत्त्व हिन्दू धर्म में दिया गया है उतना संभवत: संसार के अन्य किसी धर्म में नहीं दिया गया है। हिन्दू साधक के लिए गुरु साक्षात् परमब्रह्म परमेश्वर है। उसकी उपासना भगवान की ही उपासना है। गुरु की कृपा से सहज ही भवसागर को पार किया जा सकता है। इन महान आध्यात्मिक गुरुओं के कारण ही हिन्दुओं की आध्यात्मिक सम्पदा आज भी सुरक्षित है। यहाँ तक कि भगवान के अवतारों, श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा आधुनिक युग में भगवान श्रीरामकृष्ण ने भी क्रमश: वशिष्ठ, संदीपनी तथा श्री तोतापुरी जैसे महापुरुषों को गुरु रूप में स्वीकार किया था।

गुरु की भाँति साधुसंग को भी हिन्दू धर्म आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक एवं उपादेय मानता है। सभी हिन्दू यह स्वीकार करते हैं कि आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नत महापुरुषों का अधिकाधिक संग करना चाहिए। उनके सत्संग से आध्यात्मिक जगत में हमारी उन्नति शीघ्रता से होती है।

हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों का गुरु की महानता तथा साधुसंग की उपादेयता पर मतैक्य है।

ऊपर की पंक्तियों में शाश्वत सनातन हिन्दू धर्म के कुछ ऐसे आधारों पर जो सर्वमान्य हैं, अत्यंत संक्षेप में विचार किया गया है तथा हिन्दू धर्म की अविभाज्य एकता की ओर अंगुलि निर्देश मात्र किया गया है। वास्तव में हिन्दू धर्म के सभी तत्त्व अनेकत्व से एकत्व की ओर ही ले जाते हैं। तत्त्व एक ही है, विद्वान उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। **'एकं सद्विप्रा: बहुधा वदन्ति'**।

आज अपने देश में अनेक विघटनकारी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो उठी हैं। देश मानो खंडित और विघटित होने जा रहा है। सभी देशभक्त राष्ट्रीय एकता के तत्वों के अन्वेषण में लगे हैं। धर्म भारत राष्ट्र का प्राण है। धर्म के मंगलकारी संयोजक तत्त्वों द्वारा विघटनमुखी राष्ट्र का पुनर्गठन किया जा सकता है। इसलिए आज इस बात की महती आवश्यकता है कि हम अपने धर्म के उन समन्वयकारी सामान्य आधारों पर विचार करें जो अगणित विभिन्नताओं के मध्य भी हमें अविभाज्य एकता की ओर ले जाते हैं। हिन्दू धर्म के ये सामान्य आधार जिनके सम्बन्ध में हम जैन, बौद्ध, शाक्त, शैव, सिख आदि सभी मतैक्य रखते हैं, इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि मूलत: शाश्वत सनातन धर्म एक ही है तथा उस महान धर्म के अनुयायी होने के नाते हम सब परस्पर सहोदर भाई ही हैं।

इस अति सामान्य छोटे से लेख को अमूर्त ईश्वर के मूर्त स्वरूप इस वृहत समाज को समर्पित कर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे हमें असत्य से सत्य की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलें।

भगवन्नाम का जप

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

सभी धर्मों में भगवन्नाम के जप को बहुत महत्व दिया गया है। एक सन्त ने तो यहाँ तक कह दिया है कि कलियुग में भगवन्नाम के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

हरेर्नाम, हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥

भक्ति शास्त्रों में तो मन्त्रजप का महत्व है ही, योग सूत्र जैसे वैज्ञानिक ग्रन्थ में जिसमें सभी पूर्वाग्रहों तथा ईश्वर विश्वासादि से दूर रहते हुए भी पतंजलि नाम-जप की पद्धति एवं मन पर उसके प्रभाव का उल्लेख करना नहीं भूले। वहाँ उन्होंने ओंकार को भगवान का वाचक एवं ओंकार के जप के चित्त-वृत्ति-निरोध का एक प्रभावशाली उपाय बताया है।

तस्य वाचकः प्रणवः।
तज्जपः तदर्थ भावनम्॥

जप की पद्धति तथा मन पर पड़ने वाले उस के प्रभाव के विषय में जानने के पूर्व मन्त्र सम्बन्धी कुछ सैद्धान्तिक बातें जान लेना आवश्यक है। भगवन्नाम का जप मंत्रयोग का अंग है। शब्द के माध्यम से शरीर, मन, प्राण, चेतना, भौतिक एवं मानसिक जगत के किसी भी स्तर को प्रभावित करना, एवं उनमें परिवर्तन पैदा करना मन्त्र योग कहलाता है।

मंत्रयोग का सिद्धान्त—

मंत्रयोग इस दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है कि समस्त जगत शब्दमय है तथा उसकी उत्पत्ति शब्दब्रह्म से हुई है! इस बात को बाइबिल में "In the beginning was the word and the word was with God and the word was God." अर्थात् प्रारंभ में शब्द था, शब्द परमात्मा से संयुक्त था, शब्द ही परमात्मा था," में व्यक्त किया गया है। स्वामी विवेकानन्द को अपने परिव्रजन काल में अलमोड़ा के निकट उपर्युक्त सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक दिव्य अनुभूति हुई थी जिसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं; "परमात्म चैतन्य परम अथवा दिव्य भाव के रूप में व्यक्त होता है। भाव एवं शब्द वस्तुत: एक ही हैं, शब्द भाव का बाह्यरूप मात्र है, दोनों अभिन्न हैं, शब्द के बिना विचार और विचार के बिना शब्द असम्भव हैं। यह बात समष्टि के स्तर पर जितनी सत्य है उतनी व्याष्टि के स्तर पर भी। दोनों की बनावट एक सरीखी है।"

जगत को शब्दमय क्यों कहा गया है, इसे थोड़ा समझ लेना होगा। उच्चारित शब्द अथवा ध्वनि वस्तुत: भौतिक पदार्थ में उत्पन्न कुछ स्पन्दन हैं जो कर्णेन्द्रिय की संवेदन क्षमता की सीमा में आने पर ध्वनि के रूप में जाने जाते हैं। कुछ ऐसी भी ध्वनि तरंगें हैं (Ultra sound) जिनके स्पन्दन की गति इतनी अधिक होती है कि वे हमारे कर्णों द्वारा सुनी नहीं जा सकतीं, लेकिन जिनका उपयोग देह के भीतर की गठानों आदि की जानकारी के लिए किया जाता है। यही बात प्रकाश के सम्बन्ध में भी सत्य है। बाह्य जगत से विभिन्न स्पन्दन गतियों (Frequencies) एवं तरंग लम्बाइयों (wave lengths) की प्रकाश-तरंगें (Light waves) हमारे नेत्रों में प्रवेश करती हैं तब हम इस रंग-बिरंगी दुनिया को देख पाते हैं। लेकिन हमारे नेत्रों की सब से अधिक और सब से कम तरंग लम्बाइयों को पकड़ पाने की क्षमता के परे भी प्रकाश-तरंगें हैं जिन्हें हम देख नहीं पाते। इसी तरह विद्युत-चुम्बकीय तरंगें, एक्सरेस्

(ध्वनि-तरंगें) आदि नाना प्रकार की तरंगों से हमारा यह वायुमण्डल परिपूर्ण है। हमें इन्द्रिय जन्य ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? जब विषयों का इन्द्रियों के साथ संयोग होता है, तो संवेदन एक तरंग के रूप में नाड़ियों की सहायता से मस्तिष्क में पहुँचता है। यही नहीं, हम जिसे विचार कहते हैं, वे भी तरंग ही हैं। भौतिक स्तर पर उन्हें यन्त्र द्वारा मस्तिष्क में उत्पन्न विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में लिपिबद्ध भी किया जाता है। E. E. G)। आधुनिक बाह्य स्थूल जगत के गठन को ही लीजिए। आधुनिक विज्ञान के अनुसार समग्र जगत् अणु परमाणुओं से निर्मित है। इनके स्वरूप के बारे में विवेचन करने पर वैज्ञानिकों ने पाया कि ये अतिसूक्ष्म कण कभी तो कणों की तरह, कभी तरंगों की तरह आचरण करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि समग्र बाह्य भौतिक जगत, भले ही वह स्थूल पदार्थ के रूप में प्रतीयमान हो, वस्तुतः तरंगों द्वारा ही निर्मित है। ध्वनि, प्रकाश तथा ऊर्जा (Energy) के विभिन्न प्रकार की स्वरूपतः तरंग ही हैं। हमारे सम्वेदन एवं चिन्तन भी सूक्ष्म तरंग मात्र हैं। जगत शब्दमय है, यह इसी अर्थ में कहा गया है। मंत्रशास्त्र के अनुसार सर्वप्रथम निर्गुण निराकार अव्याकृत ब्रह्म ही था। सृष्टि के पूर्व वह स्पंदित होता है। यही स्फोट या शब्द-ब्रह्म या ब्रह्मनाद कहलाता है। इस आदि-स्पन्दन के सदा संयुक्त दो भाग होते हैं: शब्द-चैतन्य और शब्दब्रह्म। वस्तुतः ये एक ही शब्द के दो रूप हैं। यही नादब्रह्म विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म तथा स्थूल स्पंदनों, तरंगों में विभक्त हो जाता है, जिनसे स्थूल जगत एवं सूक्ष्म जगत् का निर्माण होता है। शब्द और चैतन्य सदा सभी स्तरों पर विद्यमान रहते हैं। उच्चतम स्तर पर शब्द और चैतन्य के रूप में, मन के स्तर पर शब्द और अर्थ या भाव के रूप में एवं स्थूल स्तर पर नाम और रूप के रूप में, रूप और तरंग या स्पन्दन के रूप में।

वाणी के विभिन्न स्तर—

शास्त्रों के अनुसार वाणी के चार प्रकार या स्तर होते हैं: वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। जो वाणी श्रवण-गोचर होती है वह वैखरी कहलाती है। ध्वनि के रूप में व्यक्त होने के पूर्व, जो वाणी केवल विचार के रूप में मनमें विद्यमान रहती है, वह मध्यमा कहलाती है। जो वाणी विचार से भी पूर्व, बीज रूप में रहती है, वह है पश्यन्ति, एवं सर्वव्यापी अव्यक्त शब्दब्रह्म ही परा वाणी है। मन्त्र जप का उद्देश्य, वैखरी जप से प्रारंभ कर अन्त में परा तक पहुँचना है।

आधुनिक शरीररचना एवं क्रियाशास्त्र (Physiology) के अनुसार भी वाणी के विभिन्न स्तर हैं। एक तो वाणी का स्थूल रूप है, जो गले, मुँह तथा ओष्ठादि से पैदा होती है। लेकिन स्थूल ध्वनि के रूपमें व्यक्त होने के पूर्व मस्तिष्क में वाणी के केन्द्र विशेष में पहले शब्दों का निर्माण होता है। ऐसे कई रोग हैं जिसमें रोगी बोलने की क्षमता खो देता है लेकिन पढ़ एवं सुन सकता है। इसके साथ अर्थ भी संयुक्त होता है अन्य रोगों में व्यक्ति वस्तु को पहचानता है। उसका उपयोग जानता है, लेकिन नाम नहीं ले पाता। तात्पर्य यह है कि वाणी की उत्पत्ति अनेक अंगों से युक्त एक पेचीदा प्रक्रिया है, जिसमें मस्तिष्क स्नायु-तंत्र गला एवं मुँह के विभिन्न अंग कार्य करते हैं।

मन्त्र—

जिन शब्दों के आध्यात्मिक अर्थ होते हैं वे मन्त्र कहलाते हैं। "मननात् त्रायते इति मन्त्रः।" वह मन्त्र है। सामान्य लोगों के लिए वह शब्द मात्र हो लेकिन साधक उसे महा सम्भावनाओं से युक्त, भावों, एवं विचारों के घनीभूत रूप में देखते हैं। वे एक नन्हें से बीज के समान हैं, जिनमें एक विशाल वृक्ष बनने की संभावना निहित है। वे कम्प्यूटर के एक सुदूर-नियंत्रण-बटन (Remote Coutrol Button) के समान हैं जिन्हें दबाने से महान शक्तिशाली विस्फोटादि किये जा सकते हैं।

मन्त्र को अनन्त ज्ञानराशि के सारतत्व के रूप में भी देखा जा सकता है। जैसे गन्ने के रस से पहले गुड़, गुड़ से शर्करा और अन्त में शर्करा से अत्यन्त विशुद्धीकृत मिश्री बनती है, उसी प्रकार मन्त्र के विषय में भी समझना चाहिए। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि वेदों का लय गायत्री

में और गायत्री का लय ओंकार में होता है। अर्थात् समस्त वेदों का निचोड़ गायत्री में और गायत्री का सार ओंकार में है। दूसरे शब्दों में ओंकार का विस्तार और व्याख्या ही समस्त वेद हैं।

विभिन्न प्रकार के मन्त्र—

विश्व की लगभग उन सभी भाषाओं में जिनमें धर्म-ग्रन्थ लिखे गये हैं, मन्त्र पाये जाते हैं। और मन्त्र हैं भी सैकड़ों, हजारों प्रकार के। ओम् जैसे एकाक्षर मन्त्र से लेकर अनेक अक्षरों वाले श्लोक या वाक्य रूपी मन्त्र हो सकते हैं। सामान्यत: मन्त्रों को सार्वजनिक रूप से कहा नहीं जाता क्योंकि ये अत्यंत पावन एवं गोपनीय माने जाते हैं। फिर भी कुछ मन्त्र इतने प्रसिद्ध हैं कि पाठक को मंत्रों के प्रकार समझाने के लिए यहाँ उनका उल्लेख किया जा सकता है। "ॐ नम: शिवाय," "ओम् नमो भगवते वासुदेवाय", आदि पंचाक्षर, अथवा द्वादशाक्षर मंत्र भी अत्यंत प्रचलित हैं। "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।" एवं इसाइयों का Lord Jesus, have mercy on me, a sinner" ये दो लम्बे मन्त्रों के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त वेदों के समस्त श्लोक एवं वाक्य मंत्र ही माने जाते हैं।

भगवन्नाम एवं भगवान में सम्बन्ध

पतंजलि के अनुसार ओंकार (प्रणव) ईश्वर का वाचक है: "तस्य वाचक: प्रणव:।" इस सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण एवं एक भक्त का वार्तालाप उल्लेख योग्य है। भक्त कहते हैं कि अनाहत शब्द सदा अन्दर बाहर हो रहा है। इसपर श्रीरामकृष्ण कहत हैं कि शब्द होने से क्या होगा, उसका प्रतिपाद्य तो होना चाहिए। तुम्हारे नाम से क्या आनन्द होता है? तुम्हें देखे बिना १६ आना आनन्द नहीं होता। इस पर भक्त कहते हैं कि शब्द ही ब्रह्म है। श्रीरामकृष्ण उनके इस दृष्टिकोण को भी स्वीकार कर लेते हैं।

तात्पर्य यह है कि शब्द एवं ब्रह्म के सम्बन्ध में दो दृटिकोण हैं। पहला शब्द वाचक है और ब्रह्म या ईश्वर वाच्य, और दूसरा, शब्द और ब्रह्म एकही हैं। वेदों में भी हम दोनों प्रकार का मत पाते हैं। कठोपनिषद् में एक स्थान पर प्रणव की धनुष के साथ तुलना की गयी है जिसकी सहायता से आत्मारूपी शर ब्रह्म रूपी लक्ष्य के साथ एक हो जाता है। कठोपनिषद् में ही ओंकार को श्रेष्ठ आलम्बन कहा गया है। "एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनपरम्।" यहाँ ओंकार का उल्लेख उपाय आलम्बन, या वाचक के रूप में किया गया है। वहीं ओम् को परमपद की संज्ञा भी दी गयी है—यथा—

> सर्वे वेदा:यत् पदमामनन्ति,
> तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
> यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
> तद्पदं संग्रहेण ब्रवीमि, ओमित्येवत्॥ ॥

इसके अतिरिक्त भक्तों का एक और मत है। उनके अनुसार शब्द ईश्वर से भी बड़ा, उससे भी अधिक व्यापक है। इस सिद्धान्त को दर्शाने वाली अनेक आख्यायिकाएँ हैं। स्वयं भगवान राम को समुद्र पार करने के लिए सेतु का निर्माण करना पड़ा, लेकिन राम नाम के प्रभाव से पत्थर भी सागर पर तैरने लगे। जब भगवान श्रीकृष्ण को तराजू पर तौला जा रहा था, तब सत्यभामा ने तुला के दूसरे पलड़े पर एक तुलसीपत्र पर भगवान का नाम लिखकर रख दिया, बस, वह पलड़ा भगवान से भारी हो गया। इत्यादि।

जप की विधि —

जप करने की विधि के विषय में पातंजल योग-सूत्र का एक सूत्र प्रसिद्ध हैं: "तज्जप: तदर्थं भावनम्।" प्रणव ईश्वर का वाचक शब्द है, तथा उसके जप एवं अर्थ की भावना करने से चित्त वृत्ति का निरोध शीघ्र हो जाता है। श्रीरामकृष्ण ने बड़ी ही सरल एवं स्पष्ट भाषा में जप की शर्तों का वर्णन किया है। वे कहते हैं, "जप करो निर्जन में, बिना शब्द उच्चारण किये, एकमन से। नाम जप करना अच्छा है, लेकिन अनुराग बिना लाभ नहीं होता।" इस पर किसी भक्त ने शंका की कि

अजामिल को तो बिना अनुराग के, अपने पुत्र नारायण को पुकारने से ही लाभ हुआ था। इसपर श्रीरामकृष्ण कहते हैं, कि अजामिल ने पूर्वजन्म में साधना की थी। कुछ लोगों का मत है, कि उसने बाद में तपस्या की थी। और उसने भगवान का नाम मरते समय लिया था, अर्थात् उसके बाद वह पाप में प्रवृत्त नहीं हुआ था। अतः पुनः पाप में प्रवृत्त न होना आवश्यक है। प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि अब पुनः पाप नहीं करूँगा ऐसी रोक होनी चाहिए। नाम भी करो, और प्रभु से प्रार्थना भी करो कि प्रभु तुम्हारे नाम में मुझे अनुराग हो।

जप का प्रारम्भ—यन्त्रवत जप—

उपर्युक्त शर्तें सामान्यतः आसानी से नहीं पूरी की जा सकतीं। प्रारम्भ में अधिकांश साधकों को संख्या निर्धारित कर मौखिक जप यन्त्रवत ही करना पड़ता है। कम से कम १०८ बार जप अवश्य करना चाहिए। जिसे धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। माँ सारदा प्रतिदिन एक लाख जप करती थीं। वे अपने शिष्यों को कहा करती थीं कि दिन भर में २०,००० जप करो, तब देखो मन कैसे शान्त नहीं होता। जप का अपना एक आध्यात्मिक प्रभाव होता है, चाहे अनमने होकर ही क्यों न किया जाये, उसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। गंगास्नान चाहे स्वेच्छा से किया जाये, अथवा पैर फिसल कर गंगा में गिर जायें, अथवा कोई धक्का ही दे दे—चाहे किसी प्रकार से हो, गंगा स्नान हो ही गया। उसी प्रकार जपका भी प्रभाव अवश्य पड़ता है, इसमें अविश्वास नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति दिनरात "रुपया, रुपया, रुपया" को रट लगाये तो सोचिए, परिणाम क्या होगा? धीरे धीरे उसका मन रुपये, धन के विचार से भर जायेगा। उसके बाद उसकी चेष्टाएँ धन पाने के लिए होने लगेंगी और धन और उसके साथ की सभी समस्याएँ भी उसके पास आ जुटेंगी।

हम रात-दिन न जाने कितनी विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ अनजाने सुनते हैं, कितने ही शब्द हमारे कर्ण-कुहरों में प्रवेश करते हैं—जो किसी न किसी प्रकार अपना प्रभुत्व हम पर छोड़ जाते हैं। तो फिर जप का संगीत क्यों न निरंतर चलने दें। स्वामी ब्रह्मानन्दजी कहते थे कि जप का चक्र निरंतर चलने दो। जितने समय हम संसार का चिन्तन करते हैं उतनी बार जप होना चाहिए, जिससे सांसारिक विचारों को प्रभावहीन बनाया जा सके। यदि आवश्यकता हो तो मुँह से जोर-जोर से उच्चारण करके जप करना चाहिए। जप के साथ प्राणायाम भी किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वास एवं हृदय-स्पन्दनों के साथ भी जप को संयुक्त किया जा सकता है।

प्रारंभ में जप यन्त्रवत करने पर भी अन्ततोगत्वा उसके साथ भाव, चिन्तन एवं अर्थ का संयोग करना आवश्यक है। ईसा मसीह का कथन है, "Thou shall not take the name of Lord, thy God in vain," अर्थात् अपने स्वामी, प्रभु का नाम व्यर्थ न लो। भगवान् का नाम मुँह से ले रहे हो और मन कहीं भटक रहा हो, यह तो प्रभु की उपेक्षा ही हुई। अतः जप भगवान् का नाम है; यह विचार मन में दृढ़ कर लेना चाहिए। जप का पवित्र चिन्तन एवं ईश्वरीय विचार के साथ एक दृढ़ संबंध स्थापित कर लेना चाहिए। यह भी कल्पना की जा सकती है कि मन्त्रोच्चारण के साथ-ही-साथ हमारे शरीर, मन, प्राण पवित्र हो रहे हैं। जब कभी मन अशान्त, व्यग्र एवं तनाव ग्रस्त हो तो जप प्रारम्भ कर दें और सोचें कि मन शान्त हो रहा है - सोचें कि मन्त्र शरीर एवं मन में प्रवेश कर उन्हें पवित्र एवं शान्त कर रहा है।

जप की संख्या

जप की संख्या गिनने के लिए माला अथवा उँगलियों पर जप करने की रीति है। उँगलियों पर जप करने को आवृत्त कहते हैं। इष्ट देवता के अनुसार इसके कई प्रकार है। पुरुष-देवता का आवृत्त मातृ देवी के आवृत्त से भिन्न होता है। ओंकार, ह्रिंकार, शंख, स्वस्तिक आदि रूपों के अनेक प्रकार के आवृत्त होते है जिनका निर्देश स्वयं गुरु प्रदान करते हैं। प्रत्येक के भिन्न-भिन्न फल भी शास्त्रों में वर्णित हैं।

उँगलियों पर जप करते समय एक हाथ से आवृत तथा दूसरे हाथ से संख्या का हिसाब रखा जाता है। यहाँ एक शंका हो सकती है। यदि निर्दिष्ट संख्या की ओर ध्यान रखा जाय तो मन्त्र के अर्थ का चिन्तन सम्भव नहीं होगा। इसका उत्तर यह है कि प्रारम्भ में मन को विभिन्न स्थानों में भागने से रोकने के लिए निर्दिष्ट संख्या की पूर्ति के विचार में लगाना श्रेयस्कर है। एक बार जप का अभ्यास हो जाने पर फिर उस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रहती। माँ सारदा का कथन है कि भगवान ने उँगलियाँ दी है जप करने के लिए। उनका सर्वश्रेष्ठ उपयोग जप करना ही है।

जप के लिए विभिन्न प्रकार की मालाएँ पायी जाती हैं। रुद्राक्ष, तुलसी, चन्दन की मालाएँ सबसे अधिक प्रचलित हैं। रेशम अथवा सूत की मालाएं कुछ लोग उपयोग में लाते हैं। आजकल तो प्लास्टिक के दानों वाली मालाएँ भी आ गयी हैं। लेकिन तुलसी अथवा रुद्राक्ष की माला के साथ जिस पवित्र भाव का सम्बन्ध सदियों से बना हुआ है, वह आधुनिक प्लास्टिक की मालाओं के साथ सम्भव नहीं है।

यदि जप के लिए माला का उपयोग किया जाये तो उसकी पवित्रता भी बनायी रखनी चाहिए। उसकी देखरेख भगवत-विग्रह की तरह की जानी चाहिए। कई लोग माला को गले में डाल लेते हैं, अथवा खूंटी पर टाँग देते हैं, जहाँ उस पर धूल जमती रहती है। वस्तुत: माला को इतना पवित्र समझना चाहिए कि उसका स्पर्श स्नान करने के बाद अथवा गंगा जल से हाथों को धोकर ही करना चाहिए।

जप करते समय माला नाभि के नीचे नहीं लटकनी चाहिए। इसीलिये सामान्यत: एक छोटी-सी झोली में माला को रखकर जप किया जाता है। इस झोली को गले में झुलाया भी जा सकता है। इसके पीछे का भाव यह है कि मन नाभि-चक्र के नीचे न जाये। जप करते समय तर्जनी से माला को स्पर्श नहीं करना चाहिए और इतनी सावधानी बरतनी चाहिए कि माला फेरते-फेरते वह अँगुली से फिसल न पड़े।

मंत्रोच्चारण के दोष—

मंत्र का उच्चारण करते समय उसके विभिन्न अक्षरों की मात्राओं आदि का ध्यान रख कर सही प्रकार उच्चारण करना चाहिए। एक अक्षर का उच्चारण कम करना 'हीनाक्षर' दोष कहलाता है। जैसे 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' के स्थान पर 'ओम् नमो भगवते वासुदेव—'का ही उच्चारण किया गया। इसके विपरीत यदि इसी मंत्र में 'वासुदेवाय' के बदले 'श्रीवासुदेवाय' का उच्चारण किया जाय तो यह 'अत्याक्षर दोष' हो जायेगा। 'वासुदेवाय' शब्द में 'सु' ह्रस्व है, लेकिन यदि उसका 'सू' अर्थात् दीर्घ उच्चारण किया जाय तो यह भी दोष है। कुछ मंत्र संधि सहित होते हैं। उनका संधि-विच्छेद कर उच्चारण भी दोषपूर्ण है। कुछ मंत्रों का उदात्त अनुदात्तादि स्वरों सहित उच्चारण करना होता है। ऐसा न करने पर भी दोष होता है।

चित्त की एकाग्रता एवं मंत्र के अर्थ का चिन्तन करते हुए जप करना मंत्र-जाप की प्रमुख शर्तें होते हुए भी उपर्युक्त दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इन त्रुटियों को न होने देना भी एक प्रकार की साधना है, जो साधक के प्रमाद को दूर करती है।

नि:शब्द जप—

जप तीन प्रकार के कहे गये हैं: वाचिक, उपांशु एवं मानसिक। प्रारभ में ओठों से कर्ण से सुनने लायक स्पष्ट वाणी का उच्चारण करते हुए जप किया जाता है। इस वाचिक जप का अभ्यास हो जाने पर होंठ चलते रहें पर ध्वनि उत्पन्न नहीं होती। यह उपांशु जप कहलाता है। मानसिक जप में होंठ भी नही हिलते। केवल मन ही मन जप चलता है। श्रीरामकृष्ण का कथन है कि जप नि:शब्द अर्थात् या तो उपांशु अथवा मानसिक होना चाहिए—जिससे कोई सुन या जान न सके कि अन्दर ही अन्दर जप चल रहा है।

निर्जन में जप—

श्रीरामकृष्ण कहते थे, ध्यान करो, मन में, वन में, कोने में। प्रारम्भ किसी एकांत स्थान, वन या गुफा आदि में जाकर ध्यान करना अति उत्तम है। अगर कोलाहलमय जगत् के बाह्य स्पंदन एवं व्यवधान निरन्तर हमारी इन्द्रियों के माध्यम से मन में पहुँचकर उसे विक्षिप्त करते रहें तो भगवन्नाम में मन एकाग्र नहीं होगा। एकान्त में इन्द्रियों के बाह्य स्पंदन समाप्त होने पर केवल मन में उठ रहे विचार ही रहेंगे, जिन्हें जप की सहायता से संयत किया जा सकता है। आज की नगरीय सभ्यता में इस प्रकार का एकान्त पाना कठिन है। ऐसे में घर के किसी कोने में बैठकर ही जप किया जा सकता है। नगरों में रात्रि को सभी के सो जाने पर, जप करना उत्तम है।

एक मन से जप—

श्रीरामकृष्ण के द्वारा बतायी गयी जप की शर्तों में सबसे महत्वपूर्ण है एक मन से जप करना। जप के साथ मन का संयोग अत्यन्त आवश्यक है, जिसे लक्ष्य करके पतंजलि "अर्थ भावनम्" की बात करते हैं। यहाँ 'मन' शब्द का उल्लेख व्यापक अर्थों में किया है। कल्पना, स्मरण, विचार, निश्चय, इच्छा आदि मन के विभिन्न कार्य हैं। अगर हमारी इच्छा जप करने की हो, लेकिन विचार उसके विपरीत, एवं कल्पना तीसरी ही किसी वस्तु की हो, तो ऐसी अवस्था को "एक मन" नहीं कहा जा सकता। हमारा मन "बहुशाखा—अनन्ताश्च' है, वह नाना दिशाओं में दौड़ता है, निरन्तर अपने निश्चय एवं संकल्प बदलता है, और इच्छा अनिच्छा के बीच भटकता रहता है। मन के इन सभी अंगों को एक होना होगा। एक ईसाई पुस्तक "The way of the pilgrim" में जप के लिए "एक मन" कैसे किया जाये, बड़े ही सुन्दर ढंग से बताया गया है : Prayer must be done always, constantly uninterrupted, with the lips, in the spirit, in the heart, forming a mental picture of his presence, and imploring his grace.

अर्थात् "जप (प्रार्थना) सदा-सर्वदा, व्यवधान रहित ओठों से, आत्मा में, हृदय में, परमात्मा के सान्निध्य की मानसिक कल्पना करते हुए एवं उनकी कृपा की याचना करते हुए किया जाना चाहिए।" तात्पर्य यह कि जप करते समय हम हृदय से परमात्मा को चाहें, मन से उसके रूप गुण एवं स्वरूप का ध्यान करें एवं उनके सान्निध्य की कल्पना करें।

अर्थ भावनम्—

पतंजलि भगवन्नाम् के जप के साथ उसके अर्थ की भावना का निर्देश देते हैं। अतः जप प्रारम्भ करने के पूर्व मंत्र का अर्थ अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मन्त्र ईश्वर का वाचक, उसका नाम है। योग शास्त्र के अनुसार ईश्वर पुरुष विशेष है। वे गुरुओं के भी गुरु परम गुरु हैं, एवं क्लेश कर्मादि से असंश्लिष्ट, सर्वज्ञ हैं। प्रारंभ में ओम् अथवा परमात्मा के अन्य किसी नाम के इन विभिन्न अर्थों में से एक का, मंत्रोच्चारण के समय चिन्तन करें और मंत्र के साथ अपने मन में उस अर्थ का सम्बन्ध दृढ़ कर लें, जिससे मन्त्रोच्चारण के साथ ही अर्थ मन में प्रकट हो जाए। उसके बाद दूसरे अर्थ को लें।

अर्थ की भिन्नता के अनुसार भावना भी भिन्न होती है। अगर मन्त्र का अर्थ पुरुष-विशेष लिया जाए, तो इस प्रकार भावना करनी चाहिए कि जिसके वाचक मन्त्र का जप कर रहा हूँ, वैसा मैं बनूँ—वैसा होना ही मेरा लक्ष्य है। मैं भी एक पुरुष (सांख्य दर्शन में चैतन्य आत्मा को पुरुष कहते हैं)हूँ पर अज्ञान के कारण बद्ध हूं। मैं मन्त्र के जप से, इसके वाच्यपुरुष की तरह मुक्त होऊँगा। अगर मन्त्र का अर्थ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर लिया जाए, तो उस ईश्वर के प्रति प्रणिधान अथवा समर्पण एवं शरणागति की भावना करनी चाहिए। और यदि उसे ज्ञानदाता गुरु के अर्थ में लिया जाय तो उनसे स्वयं को सन्मार्ग में प्रेरित करने की प्रार्थना रूपी भावना करनी चाहिए।

अनुराग पूर्वक जप—

भगवान् एवं भगवन्नाम के प्रति अनुराग जप में सिद्धि लाभ की सबसे महत्वपूर्ण शर्त है। नाम एवं नामी अभेद हैं, भगवान और उनका नाम दोनों में कोई अन्तर नहीं है, वैष्णव धर्म के इस सिद्धान्त को स्मरण कर हमें आदर, श्रद्धा एवं अनुराग पूर्वक जप करना चाहिए। नामोच्चारण में रस धीरे धीरे आता है, लेकिन एक बार मंत्र जाप का रसास्वादन करने के बाद साधक उसे छोड़ना नहीं चाहता। प्रभु हमारे परम प्रेमास्पद हैं, और मंत्र उनका नाम है—नाम से प्रेमास्पद का स्मरण होता है और हृदय आनन्द से भर जाता है। लेकिन जब तक यह नहीं होता तब तक निष्ठापूर्वक, जप करते जाना चाहिए।

भगवन्नाम का जप भगवान को पुकारने के समान है और जितनी तीव्रता, व्याकुलता एवं अनुराग से वह किया जायेगा, उतना ही प्रभावशाली होगा। कल्पना कीजिए कि एक व्यक्ति पानी में डूब रहा है, और व्याकुल होकर चिल्लाता है "बचाओ"। इस "बचाओ" शब्द के पीछे जो तीव्रता, व्याकुलता है, वह व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखती। उसे सुनते ही लोग बचाने के लिए दौड़े जाते हैं। अथवा एक छोटे बच्चे का ही उदाहरण ले लीजिए—खेलते खेलते वह बीच बीच में माँ पुकारता है पर माँ अपने कामों में व्यस्त रहती है, उसकी पुकार नहीं सुनती। पर खेल से ऊबकर अब वह जोर से "माँ" कहकर चिल्लाता है तब माँ सब काम छोड़कर दौड़ी आती है। जप भी "बचाओ", "माँ" आदि शब्दों की तरह ही प्रभु के लिए पुकार है, जिसका उद्देश्य भगवान को पाना है। इसी प्रकार की व्याकुलता के साथ एक बार किया गया मन्त्रोच्चारण भगवान को भक्त तक खींच ला सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि गला फाड़कर चिल्लाना चाहिए। वस्तुतः प्रभु तो हृदय की व्याकुलता देखते हैं। अगर तीव्रता हो तो मुँह से मन्त्रोच्चारण न होने पर भी प्रभु मन्त्र को सुनते हैं। अगर प्रभु एक बार न सुनें तो बार बार उन्हें पुकारना चाहिए—जब तक कि वे पुकार न सुन लें।

जप से ध्यान की ओर—

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि जप ध्यान की ओर ले जाता है। वस्तुतः जप, ध्यान की पूर्व भूमिका है और ध्यान में पर्यवसित हो जाता है। अगर ध्यान तैलधारावत् अखण्डित भगवच्चिन्तन है, तो जप खंडित धारा की तरह है। जप एक सीध में विन्दु लगाने की तरह है जो मिलकर अन्त में ध्यान बन जाता है। सर्वप्रथम वाचिक जप होता है। बाद में वह बन्द होकर अन्दर ही अन्दर जप का प्रवाह बना रहता है। इसके बाद यह मानसिक जप का प्रवाह भी बन्द हो जाता है, केवल हृदय में, मन में भगवान् का रूप बना रहता है। अन्त में यह भी समाप्त होकर केवल अर्थ मात्र रह जाता है। इस तरह जप ध्यान में और ध्यान समाधि में पर्यवसित हो जाता है। साधक को प्रत्येक अवस्था में उस क्रिया विशेष को करते रहना चाहिए। ये प्रगति एवं परिवर्तन अपने आप होते हैं।

मन्त्र जप की अन्य विधि—

यह आवश्यक नहीं कि मन्त्र के अर्थ की भावना सदा की ही जाए। जिस प्रकार राम, कृष्ण आदि के चित्र या मूर्तियाँ परमात्मा की प्रतीक हैं, उसी प्रकार राम, कृष्ण आदि नाम भी परमात्मा के प्रतीक हैं। जिस प्रकार रूप का ध्यान करते करते वे चैतन्य हो जाते हैं— अर्थात् उनके पीछे निहित चैतन्य सत्ता प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार मन्त्र का ध्यान एवं श्रवण मात्र करते रहने से, वे चैतन्य हो जाते हैं। अर्थात् मन्त्र फिर केवल ध्वनि मात्र न रहकर चैतन्य प्रतीत होने लगता है, और जिस प्रकार भगवान के रूप का ध्यान हृदय, भ्रूमध्य आदि केन्द्रों में किया जाता है, उसी प्रकार मन्त्र का मन ही मन उच्चारण करते हुए उसकी ध्वनि को मन ही मन हृदय या भ्रूमध्य में सुना जा सकता है। प्रगति होने पर मन्त्र लुप्त होकर चैतन्य मात्र रह जाएगा।

ससीम में असीम की झलक

—स्वामी शुद्धानन्द

[अतीन्द्रिय दर्शन हमें उच्चतर श्रेणी के सत्य के समक्ष उपस्थित करता है, जिसे सर्वदा पारंपरिक तर्कशास्त्र की धारणाओं द्वारा नहीं समझा जा सकता है। इस प्रकार के दर्शन के लक्षण हैं कि ये प्राय: प्रतीकात्मक होते हैं और जो इसके जानकार हैं, उनके समक्ष ये अनेक भावों को उद्घाटित करते हैं। निम्नलिखित उद्धरण स्वामी शुद्धानन्द (स्वामी विवेकानन्द के शिष्य तथा आगे चलकर रामकृष्ण संघ के पंचम महाध्यक्ष) के पत्र से लिया गया है, जिसे उन्होंने मायावती स्थित 'प्रबुद्ध भारत' के तत्कालीन संपादक स्वामी अशोकानन्द को लिखा था। इसमें वर्णन है कि किस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक भक्त को कृपापूर्वक दिव्य दर्शन कराया था।]

श्री श्री रामकृष्ण: शरणम्

लक्ष्मी निवास, मधुपुर
इ० आइ० आर
ता : २३-६-१९२८

प्रिय अशोकानन्द जी,

(……जिस बंगाली महाशय के सम्बन्ध में आपने चर्चा की है, उनका नाम है—कालीप्रसन्न चट्टोपाध्याय। जब १९१२ ई० में स्वामीजी की जन्म तिथि के अवसर पर अपने बनारस अद्वैत आश्रम में भाषण करने के लिए मैं उन्हें आमंत्रित करने गया तो उन्होंने निम्नलिखित घटना सुनायी। उस अवसर पर गया के परमानन्द मेरे साथ थे।)

मैं प्राय: रामकृष्ण देव के पास जाया करता था और उन्हीं दिनों स्वामीजी से मेरा परिचय हो गया। एक बार स्वामीजी से मेरा इस विषय पर विवाद हो गया कि—"ससीम में असीम कैसे समा सकता है?" उन्होंने उत्तर दिया था कि इस प्रकार के सत्यों की अनुभूति केवल साधना द्वारा हो सकती है। तत्पश्चात् अमेरिका से स्वदेश लौटने पर १८९७ ई० के अंत में स्वामीजी का लाहौर आगमन हुआ। वे नगेन गुप्ता के यहाँ ट्रिब्यून कार्यालय में ठहरे थे। नगेन बाबू संपादक थे तथा मैं सह संपादक। मैं अपने धार्मिक आदर्श की तलाश में इस्लाम धर्मावलंबियों, आर्य समाजियों तथा कई दूसरे सम्प्रदाय के अनुयायियों से मिल चुका था। स्वामीजी मुझे बहुत प्यार करते थे और प्रति सुबह मुझे आमंत्रित कर अनेक विषयों पर चर्चा किया करते थे। वे हास-परिहास में मुझसे कहते—"आइये काली बाबू, हमलोग भगवान का नामजप जोर-जोर से करें।"

इसी तरह एक दिन उन्होंने मुझे बुलाया। मैं उनके पास जाकर बोला, "स्वामीजी! रामकृष्णदेव के समक्ष एकबार हमलोग बहस कर रहे थे कि असीम किस तरह ससीम में रह सकता है? क्या अब आपको यह घटना याद है?" स्वामीजी ने कहा—'निश्चय ही मुझे पूरी तरह से याद है। अमेरिका में फिलाडेल्फिया निवासी एक भद्र व्यक्ति से मैंने कुछ सीखा था। इसकी सहायता से अब मैं इसका व्यावहारिक प्रदर्शन भी कर सकता हूँ। तब मैं इसके प्रदर्शन के लिए उन्हें आग्रह करने लगा। उन्होंने कहा, "अभी तो शरीर उतना अच्छा नहीं है, फिर भी मैं कोशिश करूँगा।" उसके बाद वे ध्यानस्थ होकर मेरे हाथ को एक मिनट तक पकड़े रहे। इसके फल: स्वरूप मुझे निम्न प्रकार के दर्शन हुए।

(उस समय मैं स्वामीजी के साथ ट्रिब्यून ऑफिस में था। इस घटना की सत्यता के सम्बन्ध में मैं जो कुछ

mental picture of his presence,

साक्ष्य-प्रदान कर सकता हूँ, वह इस प्रकार है : एक दिन प्रातः काल जब मैं स्नान करके वापस आ रहा था तो मैंने देखा कि स्वामीजी ध्यानस्थ होकर कालीबाबू का हाथ पकड़े हुए हैं। परन्तु इस तरह करने से क्या फल हुआ, इस सम्बन्ध में मैंने स्वामीजी से कुछ पूछा नहीं। कालीबाबू से भी कुछ नहीं पूछा, क्योंकि तब मैं उनसे अधिक परिचित नहीं था। उस समय मेरे मन में कुछ जानने की उत्सुकता भी नहीं जगी। यह कुछ विचित्र-सा लगा। मैंने सोचा कि स्वामीजी शायद कालीबाबू के भीतर शक्तिपात कर रहे हैं। आगे चलकर कालीबाबू से जब मैंने इस घटना को सुना तब मुझे उस समय की बातें याद आयीं - शु०)

कालीबाबू ने आगे कहा, "मुझे ऐसा लगा मानो मैं एक विशाल समुद्र के ऊपर उड़ रहा हूँ। अनेक युगों से मैं यात्रा करता रहा हूँ। अनवरत भयंकर तूफान आते रहे हैं, घनघोर बारिश होती रही है। मैं नहीं जानता कि कितने समय तक मैं इस प्रकार भटकता रहा हूँ। अंत में मैं अत्यंत क्लान्त हो गया। किसी सहारे की खोज में चलते चलते मुझे एक बेड़ा मिलता है। मैं इस पर सवार होता हूँ और यह चल पड़ता है। यह दक्षिणेश्वर पहुँचता है। बेड़े से बाहर आने पर मैं श्री रामकृष्णदेव को देखता हूँ; कुछ और लोग भी वहाँ उपस्थित हैं।"

इस दिव्यदर्शन की विशेषता यह है कि इतने लम्बे समय की अनुभूति मात्र एक मिनट के भीतर होती है........। कालीबाबू का तो अब देहान्त हो चुका है। कुछ समय वे अमृत बाजार पत्रिका के संपादक-मंडल में थे। बाद में धर्ममहामंडल बनारस द्वारा प्रकाशित एक अंग्रेजी पत्रिका के वे संपादक बने। वे जब कभी भी स्वामीजी की चर्चा करते तो उन्हें 'गुरुदेव' कहा करते थे।[1]

आपका ही
शुद्धानन्द

[1]एक अधेड़ महिला, जिसका जन्म मास्को में हुआ था तथा जिसने अपनी किशोरावस्था वहीं बितायी थी, उसे भी कुछ इसी प्रकार की अनुभूति हुई थी।

"जब वह रूस में थी तो उसने एक स्वप्न देखा था, जिसे अब वह बहुत भाव विह्वल होकर सुनाया करती है। स्वप्न में उसने एक ज्योतिर्मय पुरुष को देखा जो उसे प्रस्थान कर रहे एक जहाज पर ले गये। वह एक अंधेरी रात थी और जहाज असीम समुद्र में जा रहा था। वह भयभीत थी। उसके बाद एक दूसरा पुरुष, जिसके चेहरे को उसने अत्यंत स्पष्ट रूप से देखा, सामने आये और बोले, "भय की कोई बात नहीं है। इस अंधकार में भी जहाज अपने गंतव्य पर पहुँच जायगा।" उसका भय दूर हो गया और तभी उसकी नींद खुल गयी। उसके बाद कई वर्षों तक वह उस चेहरे को रूस तथा इंगलैण्ड में निष्फल खोजती रही तत्पश्चात् १८९९ ई० के अक्टूबर महीने में जब वह लंडन के प्रिंसेस हॉल में स्वामीजी का भाषण सुनने आयी; तब उसने देखा वहाँ—अपने स्वप्न-पुरुष को।" इस घटना का वर्णन महेन्द्र नाथ दत्त की बंगला पुस्तक "लंडने स्वामी विवेकानन्द" (१:८६-८८) में है और इसे मेरी लुइस बर्क ने अपनी पुस्तक—स्वामी विवेकानन्द : न्यू डिसकवरिज (दि वर्ल्ड टीचर : पार्ट II, वॉल्यूम० ४, पेज० १६) में उद्धृत किया है।

[वेदान्त केसरी, मद्रास के फरवरी '८७ अंक में प्रकाशित "इनफिनिटी पीप्स थ्रू दि फाइनाइट" का कुमार विवेक द्वारा हिन्दी रूपान्तर।—सं०]

साक्षात्कार :

धर्म और वस्तुवाद

(श्रीरामकृष्ण इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर, गोलपार्क, कलकत्ता में श्रीरामकृष्ण देव की १५० वीं जन्म-तिथि १९ से २१ जनवरी १९८७ तक मनायी गयी। इस अवसर पर आयोजित संगोष्ठी में कुछ सोवियत लेखक और वैज्ञानिकों ने भी भाग लिया। इस संगोष्ठी में उपस्थित दो रूसी सदस्य मीरा साल्जानिक और सेर्गेई सेरेब्रियान्नि से "देश" साप्ताहिक के प्रतिवेदक की हुई बातचीत के कुछ महत्वपूर्ण अंश प्रस्तुत हैं। मीरा रूस देश के लेखक-संघ की सदस्या हैं तथा भारतीय विभाग का विशेष भार इन पर हैं। सेर्गेई सेरेब्रियान्नि उस देश के एकेडमी आफ सायन्स के अंतर्गत इन्स्टिट्यूट आफ वर्ल्ड लिट रेचर से सम्बद्ध हैं तथा भारतीय साहित्य पर इन्होंने शोधकार्य भी किया है।)

प्रश्न—श्रीरामकृष्ण एवं विवेकानन्द भावधारा की ओर आप कैसे आकृष्ट हुए ?

मीरा—मैंने विश्वविद्यालय में भाषा-तत्व का अध्ययन किया था। उसी समय रामकृष्ण के सम्बन्ध में कुछ जानकारी हुई थी। बाद में मैंने रोमाँ रोलाँ कृत पुस्तक पढ़ी जिससे श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-आन्दोलन की तरफ विशेष रूप से आकृष्ट हुई।

सेर्गेई—कॉलेज में अध्ययन करते समय ही मेरे एक मित्र—जिसके पूर्वज बड़े ही विद्यानुरागी थे—के निवास-स्थान से स्वामी अभेदानन्द लिखित एक पुस्तक मुझे मिली जिससे मैं आकृष्ट हुआ। बाद में, रोम्याँ रोलाँ एवं मैक्समूलर की पुस्तकें भी मैंने पढ़ीं।

प्रश्न—आपके देश में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के भक्तों—अनुयायिओं की संख्या कितनी है ?

मीरा—यदि भक्त से आपका मतलब निष्ठावान साधुओं से है तो वैसा कोई नहीं है। पर उनके प्रशंसकों एवं अनुयायिओं की संख्या बहुत अधिक है और संख्या बराबर बढ़ रही है।

प्रश्न—अनुयायियों की संख्या वृद्धि के पीछे मूल कारण क्या है ?

मीरा—मेरी धारणा है कि आज सम्पूर्ण विश्व में मूल्य-संकट गहराता जा रहा है। विज्ञान एवं तकनीकी की प्रचंड शक्ति में वृद्धि होती जा रही है। यह तो स्वीकार्य है, पर मात्र यंत्र वृद्धि मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर सकती। मानव-मन इसके अतिरिक्त भी कुछ चाहता है। वर्त्तमान काल में सब लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए ही परम सत्ता की ओर उन्मुख हो रहे हैं। इससे एक प्रकार की रिक्तता का अनुभव होता है। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की शिक्षा इस अभाव की रिक्तता को मिटा सकती है। इनकी शिक्षाओं के माध्यम से हमें मानव की पूर्णता के सम्बन्ध में कुछ निश्चित धारणाओं का पता चलता है।

सेर्गेई—ठीक तो है। हमें अपने शुभ-अशुभ बोध या नीति-बोध को अपने पूर्व स्थान पर ले जाना चाहिए।

प्रश्न—लेकिन मार्क्स के द्वन्द्वमूलक वस्तुवाद एवं श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की शिक्षा में क्या कोई मौलिक भेद नहीं है ?

मीरा—तनिक भी नहीं। बल्कि, हमलोग सोचते हैं कि इनकी दो चिन्ताधाराओं को मिलाया जा सकता है। लेकिन मैं धर्म के नीति-तत्व को स्वीकारने की ही आग्रही हूँ, विशुद्ध धर्म-तत्वों को नहीं मिलाया जा सकता है।

प्रश्न—अच्छा, क्या आप ईश्वर में विश्वास रखते हैं ?

मीरा—निश्चित रूप से मैं हाँ या ना कुछ भी नहीं कह सकती।

सेगेई—मुझे भी कोई निश्चित उत्तर मालूम नहीं।

प्रश्न—ठीक। आपलोग यहाँ रामकृष्ण मिशन के निमंत्रण पर आये हैं और मिशन के केन्द्रों पर जाकर उसके कार्यों को देखकर आपने उसकी सराहना भी की है। पर क्या आप जानते हैं कि यहाँ के कम्युनिष्टों का श्रीरामकृष्ण मिशन से विरोध है ? ?

मीरा एवं सेगेई—हाँ, हमने ऐसा सुना है। पर, बताइए तो, दोनों में किस लिए विरोध है ? हमलोग तो मिशन के कार्यों को देखकर चमत्कृत हुए हैं। क्या यहाँ के कम्युनिष्ट इस कार्य से संतुष्ट नहीं हैं ?

प्रश्न—ऐसा ही लगता है। विशेषकर मिशन द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थाओं में कम्युनिष्ट कभी-कभी विद्रोह पैदा करना चाहते हैं। मिशन के स्कूल-कॉलेजों को वे एलिटिस्ट (विशिष्ट वर्ग का) मानते हैं।

मीरा—मुझे तो ऐसा नहीं लगता। इसके अतिरिक्त सर्वत्र बलात् कम्युनिज्म लाया नहीं जा सकता। शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में एक प्रकार का एलिटिज्म (विशिष्टवाद) होना भरसक वांछनीय भी है। पीपुलिज्म (सामान्यवाद) की धारणा से मुझे घृणा है।

सेगेई—मिशन यदि चुनिन्दा छात्रों को शिक्षा देता है तो इससे किसी को आपत्ति होगी—यह मैं समझ नहीं पाता।

[हिन्दी रूपान्तकार—डॉ० विमलेश्वर डे]

जितना ही साधन-भजन करोगे, उतनी ही भगवान की कृपा को समझ पाओगे, उन्हें हृदय में प्रत्यक्ष कर पाओगे। देखोगे, वे तुम्हारी कितने प्रकार से सहायता कर रहे हैं, उन्हें पाने के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, तुम्हारे लिए वे ही सब जुटा रहे हैं। वे स्वयं यदि आकर्षित न करें तो उनकी तरफ मन जाता भी है ? जो अनन्य भाव से उन्हें चाहता है, उनके लिए सर्वस्व का त्याग करता है, वे उसके हृदय में ऐसी प्रेरणा का संचार करते हैं कि जिससे उन्हें पाने के लिए उसके प्राण व्याकुल हो उठते हैं। व्याकुलता उनका निजी रूप ही है। व्याकुलता उनके अन्तःपुर की चाबी है।

—स्वामी विरजानन्द

प्रकृति का गुण

—स्वामी वेदान्तानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

प्रकृति नामक निबन्ध में गीता के जिन श्लोकों की विवेचना की गयी है उन्हें छोड़कर और जिन श्लोकों में प्रकृति के तीन गुणों एवं उनके कार्य के विषय में उल्लेख है, यहाँ उन सब पर एक साथ ही विचार किया जायगा।

२।४५वें श्लोक में कहा गया है "त्रैगुण्य विषया वेदा: ।" जो लोग प्रकृति के तीन गुणों में से किसी एक के विशेष रूप से वशीभूत होते हैं; उनके मन में नाना प्रकार की कामनाएँ रहती हैं। वे स्वर्ग जाकर अनेक प्रकार के सुखों को भोगने की आशा करते हैं और वही आशा लेकर वे जीवन भर अनेक प्रकार के याग-यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। वेद के कर्मकाण्ड वाले अंश में इन सब यज्ञों आदि की विधि एवं उस कर्म के फल से उत्पन्न स्वर्गसुख के विषय में वर्णन है। श्लोक के द्वितीय अंश में श्रीकृष्ण ने 'निस्त्रैगुण्य:' से, तीन गुणों के द्वारा प्रभावित नहीं होने का उपदेश दिया है और निर्द्वन्द्व, नित्य-सत्वस्थ, आस्थावान् होने को कहा है। शीत-ग्रीष्म, सुख-दु:ख आदि परस्पर विरोधी विषयों में मन की चंचलता, धैर्य का अभाव तथा सभी कार्यों में सही-सही विचार-विवेचना का अभाव, प्रकृति के तीन गुणों के द्वारा होते हैं। इसी से उन्होंने अर्जुन को कहा, किसी गुण के वशीभूत नहीं होओ।

गीता के चौदहवें अध्याय का नाम है गुणत्रय विभाग योग। इस अध्याय में तीनों गुणों के कार्य के सम्बन्ध में विशेष रूप से कहा गया है। इस अध्याय के तीसरे और चौथे श्लोक में व्यवहृत महद्ब्रह्म शब्द का अर्थ है प्रकृति। इन दोनों श्लोकों में इसकी लौकिक उपमा के द्वारा ईश्वर की निकटता के लिए प्रकृति से जीव-जगत् की उत्पत्ति होती है, यह समझाया गया है। किसी उपमा के प्रत्येक शब्द का अक्षरश: अर्थ करने से काम नहीं चलता। उसके वास्तविक तात्पर्य को समझना पड़ता है। महत् शब्द के द्वारा देश या काल के भेद के कारण जिसमें किसी भी प्रकार के भेद की उत्पत्ति नहीं होती वह वस्तु जानी जाती है। जो वस्तु अपने आप बढ़ती है उसे ब्रह्म कहते हैं। यहाँ ब्रह्म शब्द का अर्थ है प्रकृति। महाप्रलय में लीन जड़ प्रकृति चैतन्य स्वरूप ईश्वर के सम्पर्क में आकर कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि असंख्य प्राणियों को उत्पन्न करती है। यह जीव का जन्म प्रवाह के रूप में चलता रहता है। (१४/३-४)

महा प्रलय का काल समाप्त होने के बाद साम्य अवस्था को प्राप्त प्रकृति में जब परिवर्तन की सूचना मिलती है तब वही सत्व, रज: और तम इन तीन गुणों का आकार धारण करती है। इसी त्रिगुणात्मिका प्रकृति के परिणाम से जीव देहों में देह के साथ अभिन्न रूप से उपस्थित रहता है तथा चैतन्य के अंशरूपी जीवों के विभिन्न आचरणों एवं सुख-दु:ख के योग का कारण होता है। (१४-५)

चेतन जीव प्रकृति के परिणामस्वरूप तीन गुणों के प्रभाव से नाना प्रकार के कर्म करता है तथा सुख-दु:ख का भोग करता है, यह बात ५वें, छठे और ९वें श्लोक में कही गयी है। सत्व गुण का विशेष प्रकाश होने पर मनुष्य अपने को सुखी और ज्ञानी समझता है। किन्तु आत्मा चिदंश एवं ज्ञान और सुख स्वरूप है। देह में अभिमान के कारण देही आत्मा सामान्य ज्ञान एवं सामाजिक सुख के अनुभव से तृप्त रहती है।

रजोगुण के कारण रूप रस आदि विषय सभी जीवों को अच्छे लगते हैं । इस गुण के प्रभाव से किसी वस्तु को पाने की इच्छा जगती है, तथा उसे पा लेने पर उससे आसक्ति हो जाती है । इस गुण से परिचालित होकर जीव दिन-रात अनेक कार्यों में व्यस्त रहता है ।

प्रकृति या माया की दो शक्तियां, आवरण और विक्षेप, किसी भी विषय को ठीक-ठीक जानने नहीं देतीं तथा जीव को सदव चंचल किये रहती हैं । तमोगुण के द्वारा प्रकृति की आवरण शक्ति का कार्य होता रहता है । इस गुण के बढ़ने पर जीव क्या अच्छा और क्या बुरा है, यह ठीक-ठीक समझ नहीं पाता । किसी कार्य में उसे उत्साह नहीं होता । उसे सोये रहने की अधिक इच्छा होती है । (१४/६,७,८)

सत्व गुण के बढ़ने पर मनुष्य सुख की खोज करता है, किसी भी कार्य में दुःख पाने की सम्भावना रहने पर भी उससे सुख पाना चाहता है । रजोगुण बढ़ने पर जीव हर समय नाना प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहता है । तमोगुण का प्रकाश पाने पर व्यक्ति एक के बाद एक गलती कर बैठता है । वह करणीय कर्म में उत्साह की कमी का अनुभव करता है और अनुचित कार्य पर बैठता है । (१४/९)

तीनों गुण एक ही समय में समान रूप मनुष्य के मन पर प्रभाव नहीं डालते । सत्व गुण के प्रबल होने पर रजः और तमः गुण दब जाते हैं । रजोगुण प्रबल होने पर सत्व और तमः को दबा देता है । फिर तमोगुण जब प्रबल होता है तब सत्व और रजः अभिभूत हो जाते हैं । (१४/१०)

जिन लक्षणों के द्वारा आदमी के मन में कौन सा गुण विशेष रूप से कार्य कर रहा है, यह जाना जाता है, उन लक्षणों का उल्लेख किया गया है । जिस समय शरीर की आँख, कान आदि समान रूप से सजग रहते हैं, रूप, रस, शब्द आदि विषयों में प्रत्येक का अच्छी तरह अनुभव करने में मन समर्थ रहता है, उस समय सत्व गुण कार्य कर रहा है, ऐसा समझना होगा । (१४/११)

रजोगुण के प्रबल होने पर मनुष्य भोग की जितनी वस्तुएँ पाता है, उतनी से ही सन्तुष्ट नहीं रह पाता, बड़े-बड़े कार्य आरम्भ करता है, उसे किसी से तृप्ति नहीं होती, पाने या रखने योग्य जो भी वस्तुएँ देखता या जिस विषय में सुनता या जानता है, उन सभी वस्तुओं को प्राप्त करने की चेष्टा करता है । (१४/१२)

तमोगुण के प्रबल होने पर मनुष्य हिताहित का ज्ञान गँवा बैठता है, जो कुछ देखता या सुनता है उसका यथार्थ अर्थ या प्रायोजनीयता क्या है, उसे ग्रहण नहीं कर पाता । किसी भी कार्य में उसे उत्साह नहीं रहता । जो भी कार्य करने की वह चेष्टा करता है उसे उलटा-पुलटा कर बैठता है । और वह अकारण ही किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति आकर्षण का अनुभव करता है, दुःख पाने पर भी उसे छोड़ या भूल नहीं पाता । (१४/१३)

प्रायः सभी मनुष्यों के मन में तीनों गुण सदैव उपस्थित रहते हैं, समय-समय पर उनमें से किसी एक का विशेष प्रकाश देखा जाता है । फिर अधिकांश समय एक ही साथ दो गुणों के कार्य कम-अधिक होते रहते हैं ।

जिस व्यक्ति के मरने के समय सत्वगुण का विशेष प्रकाश होता है वह व्यक्ति ज्ञानी गुणी धनी मानी किसी सम्भ्रान्त पुरुष की सन्तान के रूप में जन्म ग्रहण करता है तथा विविध सुखों का अधिकारी होता है । रजोगुण के प्रबल होने के समय मरने पर व्यक्ति अनेक कार्यों में व्यस्त व्यक्ति के घर में जन्म लेता है । तमोगुण के प्रबल रहने के समय जिसकी मृत्यु होती है, उसे पशु पक्षी आदि किसी हीन जीव के रूप में जन्म लेना पड़ता है । कर्म एवं चिन्तन मनुष्य के उच्च या नीच प्राणी के रूप में जन्म लेने का कारण हो जाते हैं । (१४/१४-१५)

जिस व्यक्ति के जीवन में सत्वगण का विशेष प्रकाश होता है वह अपने कार्य के फलस्वरूप सुख का अनुभव करता है । रजोगुणी व्यक्ति सदा अपने को नाना प्रकार के कार्यों में लगाये रखने के फलस्वरूप दुःख भोग करता

है। और जिस व्यक्ति के मन में तमोगुण का प्रबल प्रभाव रहता है वह अविवेकी तथा हिताहित के ज्ञान से रहित हो जाता है। (१४-१६)

परवर्ती दो श्लोकों में मनुष्य के जीवन में तीनों गुणों के कार्यों के विषय में पुन; बताया गया है। सत्वगुण से ज्ञान एवं सत्-असत् विचार की उत्पत्ति होती है। ज्ञान के द्वारा आदमी सुख-बोध करता है। रजोगुण की वृद्धि से आदमी लोभी होता है, लोभ के कारण अनेक कार्यों का आयोजन करता है, सुख की आशा से काम में व्यस्त रहता है, किन्तु सुख के बदले दुःख ही प्राप्त होता है। तमोगुण अज्ञान को बढ़ाता है; अज्ञान के बढ़ने से आदमी कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्धारण करने में असमर्थ हो जाता है तथा अकारण व्यक्ति विशेष के प्रति आसक्त हो जाता है। (१४-१७)

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में तीन में से किसी भी एक गुण का विशेष प्रभाव रहता है। केवल मनुष्य ही नहीं, प्रत्येक चेतन जीव अपनी प्रतिकूलता का परिहार करता है अथवा उस पर विजय प्राप्त करता है, अपने विकास के लिए प्रयास करता है। तमोगुणी जड़ स्वभाव के व्यक्ति में भी आगे बढ़ने की चेष्टा बनी रहती है। किन्तु वह व्यक्ति जीवन भर तमोगुण के प्रभाव से चलता है। मरने के बाद उसे अधिकतर हीन जीवन यापन करना होता है। जो व्यक्ति अपना सारा जीवन रजोगुण की प्रबलता के कारण अनेक कार्यों में व्यस्त रहकर व्यतीत करता है, वह दूसरे जन्म में कर्म व्यस्त मनुष्य के रूप में जन्म ग्रहण करता है और, वर्तमान जीवन में जिनमें सत्वगुण की प्रबलता रहती है वे अधिकतर सुख शान्ति पाने के अधिकारी होते हैं। वे ही आदर्श मानव हैं, जो किसी भी गुण के अधीन नहीं चलते। इस चरम आदर्श की बात बाद में कही गयी है। (१४।१८)

मनुष्य अपनी देह मन बुद्धि से सारे कार्य करता है। इन सभी प्रकृतियों का परिणाम तीन गुणों से उत्पन्न होता है। अतः सभी कार्य वस्तुतः प्रकृति के द्वारा होते रहते हैं। विचार के द्वारा जो तत्व-धारणा कर पाते हैं वे चेतन आत्मा को जड़ प्रकृति के परिणामों से भिन्न मानकर स्थिर सिद्धान्त बनाने में समर्थ होते हैं। आत्मा कोई कार्य नहीं करती, किन्तु प्रकृति के सभी कार्यों की साक्षी मात्र रहती है, ऐसी धारणा के कारण वे ब्रह्म के साथ अपनी अभिन्नता की उपलब्धि करने में समर्थ होते हैं। (१४।१९)

प्रकृति के तीनों गुण ही सभी प्राणियों की देह के आकार में परिणत होते हैं। जीव का अहंकार भी इन्हीं तीन गुणों से उत्पन्न होता है। सर्वव्यापी ईश्वरचैतन्य के संस्पर्श में आने के फलस्वरूप प्रत्येक जीव में स्थित अहंकार एक एक पृथक सत्ता है, ऐसा प्रतीत होता है। इस चैतन्ययुक्त अहंकार से ही शोक हर्ष, भय क्रोध, लोभ मोह स्पृहा, यहाँ तक कि जन्म-मृत्यु से विविध दुःखों का अनुभव होता है। देह में निवास करने वाला जीव जब साधना के बल एवं ईश्वर की कृपा से तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त होता है तब उसके सभी दुःखों की निवृत्ति होती है एवं वह परमानन्द का अनुभव करता है तथा देह की समाप्ति होने के बाद उसका फिर जन्म नहीं होता। (१४।२०)

परवर्ती पाँच श्लोकों में गुणातीत व्यक्ति का लक्षण बताया गया है। जब तक शरीर जीवित रहता है तब-तक तीनों गुणों के कार्य कमोवेश चलते रहते हैं। सत्वगुण के प्रबल होने पर प्रकाश, सुख एवं आनन्द का अनुभव होता है। रजोगुण की वृद्धि होने पर प्रवृत्ति अर्थात् कार्य करने की इच्छा होती है। तमोगुण के बढ़ने पर मोह की उत्पत्ति होती है। जो व्यक्ति तीनों गुणों के कार्य को समझते-बूझते हैं, वे किसी गुण का कार्य चलता रहे ऐसी कामना नहीं करते, साथ ही कार्य आरम्भ हो रहा है, यह देखकर वे विरक्त भी नहीं होते। (१४।२२)

इस प्रकार तीनों गुणों के कार्यों की जो समान भाव उपेक्षा करते हैं, एवं उन कार्यों के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध या प्रयोजन नहीं है—इस तत्व का अनुभव करते

हैं, वे किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करते हैं, यह बात बाद के तीन श्लोकों में कही गयी है। वे जानते हैं कि प्रकृति का परिणाम देह और इन्द्रियाँ तीनों गुणों के कार्य सुख-दुःख का भोग करती हैं। इस ज्ञान के फल-स्वरूप वे गुणों के कार्य को उदासीन भाव से देखते हैं तथा किसी भी कारण से वे चंचल नहीं होते। वे सुख और दुःख की समस्त घटनाओं को समान भाव से ग्रहण करते हैं। देह से भिन्न ज्ञान और आनन्दस्वरूप आत्मा है—यह बोध उनमें समान रूप से रहता है। वे ऐश्वर्य पाने से उत्फुल्ल अथवा दरद्रिता आने पर दुःखी नहीं होते। जिन प्रिय या अप्रिय घटनाओं के घटने पर साधारण मनुष्य विचलित हो जाते हैं, उनमें वे स्थिर रहते हैं। विचार बुद्धि के रहने से वे सभी अवस्थाओं में शान्त बने रहते हैं। दूसरों की निन्दा या प्रशंसा से, अथवा किसी के द्वारा सम्मान प्रदर्शित करने या किसी के द्वारा अपमान करने पर, वे उन सब को ग्रहण नहीं करते। शत्रु और मित्र पर उनकी समान प्रीति रहती है। मान और यश की आशा से अथवा मरने के बाद स्वर्ग-सुख भोग करने के लोभ से वे किसी कार्य को करने में उत्साह का अनुभव नहीं करते। (१४।२३-२५)

इस प्रकार गुणातीत अवस्था को प्राप्त करने के दो उपाय हैं। पहला उपाय है ज्ञान योग का साधन। यानी प्रत्येक क्षण नित्य और अनित्य वस्तु का विचार तथा अनात्म वस्तु से आत्मा की पृथकता का अनुभव करना। अधिकांश कल्याणकामी व्यक्ति के लिए यही सुगम मार्ग है। इसी से कहा गया है कि जो व्यक्ति एकनिष्ठा भक्ति के साथ, देह मन प्राण की समस्त चेष्टाओं का नियोजन कर ईश्वर की उपासना करते हैं, वे तीनों गुणों के प्रभाव का अतिक्रमण करने में समर्थ होते हैं। ईश्वर को छोड़कर किसी दूसरी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं रहने से उनकी व्यक्ति सत्ता विलुप्त हो जाती है और वे ईश्वर के साथ नित्ययुक्त रहकर कृतार्थ हो जाते हैं। (१४।२६)

पन्द्रहवें अध्याय के पहले और दूसरे श्लोक में संसार की तुलना एक वृक्ष से की गयी है। जल सींचने के फलस्वरूप जिस प्रकार पेड़ बढ़ जाता है उसी प्रकार सत्व रजः और तमः गुण के प्रभाव से संसार के समस्त कार्य विस्तार पाते हैं। "गुण प्रवृद्धाः"—(१५/२)

इसी अध्याय के १०वें श्लोक के 'गुणान्वितं' शब्द का अर्थ है प्रकृति के गुण के साथ युक्त।

गीता के सतरहवें अध्याय का नाम है श्रद्धात्रय विभाग योग। इस अध्याय में मनुष्य के स्वभाव को जिन चिन्तनों और विचारों का प्रभाव विकसित करता है, उन सब का वर्णन आरम्भ से ही किया गया है। मनुष्य के चिन्तन, विश्वास और आचरण के सात्विक, राजसिक एवं तामसिक ये तीन भेद दिखायी पड़ते हैं। (१६।२)

कभी-कभी कोई भी एक गुण मनुष्य के मन में विशेष रूप से प्रकाशित होता है। जब सत्वगुण की क्रिया विशेष रूप से होती रहती है तब मनुष्य के चरित्र में संयम, सन्तोष, दया आदि सद्‌गुण प्रकट होते हैं। किन्तु रजो-गुण अथवा तमोगुण जब प्रबल होता है, उस समय इन दोनों गुणों के तारतम्य के अनुसार मनुष्य के चरित्र और आचरण में परिवर्तन घटित होता है। (१६।३)

बाद के तीन श्लोकों में कहा गया है कि मनुष्य की पूजा-उपासना में तीन प्रकार की निष्ठा गुण के अनुसार अलग-अलग होती है। (१६।४-१३)

अट्ठारहवें अध्याय के भी अनेक श्लोकों में मनुष्य के चिन्तन और कार्यों के ऊपर पड़ने वाले तीनों गुणों क प्रभाव की बात अनेक रूपों में बतायी गयी है।

स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

स्वामी सदाशिवानन्द

कुछ ही दिनों के भीतर मुझसे बड़े मेरे एक चिकित्सक भाई का आकस्मिक निधन हो गया। इस मृत्यु से मुझे ऐसा गहरा धक्का लगा मानो किसी ने अत्यंत निकट से मुझ पर गोली की वर्षा कर दी हो। कुछ दिनों बाद स्वामीजी ने मुझसे पूछा—"मैंने सुना है कि तुम्हारे भाई की मृत्यु हो गयी है। तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है? सांत्वना के रूप में माँ से तुमने क्या कहा?" जब मैंने अपनी बातें स्वामीजी से कही तो वे आश्चर्य व्यक्त कहते हुए बोले "यदि मेरे भाई का देहान्त हुआ रहता तो निःसन्देह मुझे काफी दुःख होता"। उस क्षण मेरे भाई की मृत्यु को वे अपने सगे भाई की मृत्यु की तरह अनुभव कर रहे थे और अत्यंत ही आश्चर्यजनक ढंग से इस हमदर्दी ने मेरे सारे शोक को हर लिया। मुझे ऐसा लगा कि वास्तव में वे मेरे सच्चे मित्र हैं तथा अपने भाई से बढ़कर हैं। उसी क्षण अपने को पूर्णतः उनके चरण कमलों में समर्पित करने का मैंने दृढ़ निश्चय किया।

साधारणतः यह प्रथा है कि जब तक श्राद्ध-क्रिया समाप्त नहीं हो जाती तब तक दीक्षा नही दी जाती है। परंतु मेरे मामले में स्वामीजी ने इसे अपवाद के रूप में रखा। उन्होंने मुझे अधिवास के लिए रात भर ठहरने को कहा क्योंकि अगला दिन दीक्षा के लिए तय हुआ था।

प्रातः काल स्नान करके, पूर्णरूप से तैयार होकर हमलोग उनके कमरे के सामने प्रतीक्षा करने लगे। हमारी अधिक प्रतीक्षा के पूर्व ही दरवाजे खुल गये और स्वामीजी बाहर निकले। उनका मुखमंडल दैवी तेज से प्रदीप्त था। एक विचित्र लहजे में बोलकर हाथ का इशारा करते हुए उन्होंने हमलोगों को बारी-बारी से अंदर आने को कहा। चारु बाबू ने मुझे धकेलते हुए पहले भीतर जाने को कहा। मैं ज्योंही उनके पास गया, वे बोल पड़े, "अच्छा! तो तुम पहले आये! ठीक है, ठीक है, मेरे साथ आओ, मेरे बच्चे!" तब हम दूसरे कमरे में गये, जहाँ फर्श पर दो आसन बिछे हुए थे। एक पर वे आसीन हुए तथा दूसरे पर मैं।

कुछ ही क्षणों में स्वामीजी गहरी समाधि में निमग्न हो गये—शरीर उन्नत एवं जड़वत, अंग-प्रत्यंग निश्चेष्ट, आँखें अधखुली एवं अत्यंत चमकीली। उनके मुखमंडल पर दिव्य भाव, प्रेम एवं शक्ति की झलक स्पष्ट दीख रही थी। वे मूर्तिमान आनन्द थे; किन्तु उनकी तपः-प्रसूत शान्ति ने समस्त भावनाओं को संयमित एवं दमित कर रखा था, जो उनके भीतर बिलकुल तरंग विहीन, अचल एवं जमी हुई सी पड़ी रही। यह वही व्यक्ति थे जिन्होंने कुछ क्षण पूर्व संकेत से मुझे कमरे के भीतर बुलाया था; और अब मेरे समक्ष दूसरे व्यक्ति बैठे थे जो प्रेम या अन्य किसी प्रकार की भवनाओं से परे हो चुके थे।

इस प्रकार वे निश्चल बैठे रहे और काल हमारे बाहर बाधित पड़ा रहा। ऐसा लग रहा था मानो वे इस अभिव्यक्ति तथा दैवी भाववेश के प्रसर्जन के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हों; और यह भाव धीरे-धीरे शमित होकर उनके श्रीविग्रह में नियंत्रित पड़ा रहा। कुछ क्षण तक उन्होंने मेरे हाथों को अपने हाथों में रखा। इसके बाद उन्होंने मेरे जीवन की कुछ विगत घटनाओं के बारे में कहा तथा इसी क्रम में बोले, "जब तुम स्टीमर से छपरा जा रहे थे, तब कोई व्यक्ति तुमसे कुछ कह रहा था, उस समय तुम्हें कैसा लगा?" मैं इस घटना को भूल

चुका था, परन्तु उन्होंने कहा, यदि याद कर सकते हो तो इसे याद करो। यह रामस्वरूपाचार्य थे जिनसे मेरी मुलाकात आरा में हुई थी और जिन्होंने बाद में मुझे वैष्णव मंत्र से दीक्षित किया था। वे आजमगढ़ जिले के निवासी थे और विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजीय सम्प्रदाय के अनुयायी थे। मुझे उनका चिंतन करने को कहा गया और जब मैं उनका चिंतन कर चुका तो उन्होंने कहा, "अब श्रीरामकृष्णदेव का चिंतन करो तथा मुझे उनके रूप में तथा उनको गणेश के रूप मे रूपान्तरित करो। गणेश संन्यास के आदर्श हैं।"

उनके स्पर्शमात्र से मेरे सारे विचार, सारी वासनाएँ लुप्त एवं विलीन हो गयीं। मन में किसी भी प्रकार का आकर्षण अथवा विकर्षण न था और न कोई वासना या अभिलाषा। मैं नहीं जानता कि कितनी देर तक इस अवस्था में रहा, किन्तु धीरे-धीरे मेरा देहबोध लौट आया और अभी भी कमरे की वस्तुएँ आदि धुंधली सी दीख रही थीं। मैं दीक्षा के बाद उठ खड़ा हुआ। स्वामीजी ने दूसरे दीक्षार्थी को भेजने को कहा। मैंने बाहर जाकर चारु बाबू को भेजा। उनकी भी दीक्षा उसी तरह से हुई और अंत में हरिदास चटर्जी को।

दीक्षा अनुष्ठान की समाप्ति के बाद हमलोगों ने एक साथ भोजन किया। उसके बाद मुझे सेवाश्रम लौट जाना था, क्योंकि वहाँ बहुत सारे कार्य पड़े हुए थे, जिन्हें स्वामी विवेकानन्द से अनुप्राणित होकर सेवा के आदर्श से प्रेरित हो, तीन वर्ष पूर्व प्रारंभ किया गया था। अधिकांश कार्यकर्त्ता घर छोड़ चुके थे और भिक्षा-दान पर जीवन निर्वाह करते थे और बहुत हद तक हमारी शक्ति उसी में (दान संग्रह में) क्षय हो जाती थी, परन्तु किसी भी हालत में सेवाश्रम के कार्य को क्षति नहीं पहुँचने देता था और कार्यकर्त्ता अपनी पूरी शक्ति लगाकर कार्य करते थे जिसका बहुत अधिक असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता था। स्वामीजी यह सब देखकर अत्यंत दुःखी हुए थे। एक दिन उन्होंने सब को बुलाकर कहा कि अच्छी तरह खाना खाओ तथा पौष्टिक आहार लो; क्योंकि दूसरों की सेवा करने के लिए यह जरूरी है कि अपना शरीर स्वस्थ एवं बलवान हो। वे कहा करते थे कि खाद्य पदार्थ के चयन में कार्य की प्रकृति तथा कार्यकर्त्ता के शरीर गठन तथा स्वभाव को ध्यान में रखना आवश्यक है। हमलोगों में अधिकांश तपस्वी स्वभाव के थे और कुछ खास प्रकार के भोजन तथा कुछ स्वादिष्ट मिठाइयाँ तो हमलोग चखते तक नहीं थे। किन्तु स्वामीजी सेवा के लक्ष्य एवं उद्देश्य पर प्रथम तथा आखिरी बल देते थे। दूसरों की सेवा के लिए शरीर को बिल्कुल स्वस्थ एवं दुरुस्त रहना चाहिए। अतः सच्चे कार्यकर्त्ता एवं कर्मयोगी के लिए तपश्चर्या एवं व्यक्तिगत संस्कार कम महत्व की चीज है। उन्होंने हमलोगों को अपने साथ भोजन करने को कहा ताकि वे देख सकें कि हमलोग उनकी बातों का पूर्णतः पालन कर रहे हैं या नहीं। हमलोगों में से कुछ अपने परिवार में ही भोजन करते थे, परन्तु वे बार-बार अपने साथ भोजन करने का आग्रह करते थे, और यदि संभव होता था तो हमलोग वैसा करते भी थे। (क्रमशः)

अनुवादक—कुमार विवेकानन्द

"......विवेकानन्द ने शिक्षित हिन्दुओं के विश्वास की पुनः प्रतिष्ठा की, जैसा कि पूर्व में कोई भी सुधारक करने में समर्थ नहीं हुआ था।......विवेकानन्द का नव-हिन्दू-धर्म, विकास के अपने कई पहलुओं में, आधुनिक भारत में सबसे शक्तिशाली धार्मिक प्रभाव का विस्तार करनेवाला है। महात्मा गांधी की प्रतिमा ने इसे आत्मसात् कर जो रूप दिया है, उसने भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन को एक आधारभूत दर्शन प्रदान किया है।"

—प्रोफेसर ए॰ एल॰ बाशम, (विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार)

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

विविध अवसरों पर लाटू महाराज ने हमें यदु बाबू के बारे में अनेक बातें बतायी थीं। उन्हें एक साथ प्रस्तुत करने पर हमें लगता है, पाठकों को सुविधा होगी। इनमें से कोई बलराम मन्दिर में, कोई काशी में और कोई हरमोहन बाबू के घर में सुनने को मिली थीं। इनमें से कोई घटना सम्भव है लाटू महाराज के आने के पूर्व की हो (जो उन्होंने सुनकर हमें बताया हो), और कोई-कोई सम्भव है उनके दक्षिणेश्वर निवास काल में घटी हो।

''जानते हो! यदु बाबू से एक दिन उन्होंने कहा—'क्यों जी यदु! तुम इन लोगों (कुछ चाटुकारों की ओर इंगित करते हुए) के साथ इतना मेलजोल क्यों रखते हो?' इस पर यदु बाबू ने क्या कहा था जानते हो? —'इज्जतदार आदमी के लड़के हैं, भिक्षा नहीं माँग सकते, कुछ पाने की आशा में यहाँ पड़े रहते हैं, उन्हें वंचित करने पर वे बेचारे कहाँ जायेंगे।' इस पर ठाकुर ने कहा था—'उनसे ज्यादा मेल न रखो, क्षति हो सकती है।' इस पर यदु बाबू ने कहा था—'देखो छोटे भट्टाचार्य! धन-सम्पत्ति रहने पर ऐसे लोगों की आवश्यकता है।'···एक दिन ठाकुर ने उन्हें (यदु बाबू से) कहा—'यहाँ (अर्थात् इहलोक) के लिए तो तुमने काफी संग्रह कर लिया है, परन्तु परलोक के लिए क्या व्यवस्था की है?' इस पर यदु बाबू ने कहा—'परलोक के खिवैया तो तुम हो ही छोटे भट्टाचार्य! अन्तिम दिन तुम्हीं मुझे पार करोगे, इसी आशा में तो बैठा हूँ। मेरा उद्धार न करने पर तुम्हारे पतितपावन नाम पर धब्बा लगेगा। देखो छोटे भट्टाचार्य! अन्तिम दिन भूलना मत।'··· देखो, यदु मल्लिक को इतनी दौलत थी, तो भी उनका धन का लोभ गया नहीं। इसीलिए एक दिन उन्होंने (ठाकुर ने) उनसे कहा—'क्यों जी यदु! इतना कमा लिया है, तो भी धन का लोभ नहीं गया?' इस पर यदु बाबू ने कहा था—'देखो छोटे भट्टाचार्य! वह लोभ तो जाने वाला नहीं है। जैसे तुम भगवान का लोभ नहीं छोड़ पाते हो वैसे ही संसारी आदमी धन का लोभ नहीं छोड़ सकता। और पैसे का लोभ भला छोड़ें ही क्यों? तुम भगवान के लिये पागल हो सकते हो, परन्तु मैं तो उनके ऐश्वर्य के लिए पागल हुआ हूँ। तुम सब कुछ छोड़कर उन्हें चाहते हो और मैं उनके ऐश्वर्य का भिखारी होकर रुपया रुपया कर रहा हूँ। अच्छा, बोलो तो छोटे भट्टाचार्य! रुपया क्या उनका ऐश्वर्य नहीं है?' यह सुनकर ठाकुर बड़े खुश हुए और बोले—'यही अगर तूने ठीक-ठीक समझ लिया है तो तुम्हें चिन्ता क्या है जी?' फिर उनसे पूछा—'क्यों जी यदु! सरल भाव से यह बात कह रहे हो या चालाकी पूर्वक?' इस पर यदु बाबू ने कहा था—'सो तो तुम्हीं जानते हो छोटे भट्टाचार्य! तुम्हारे सामने तो मन की बात छिपायी नहीं जा सकती।'····

एक दिन उन्होंने यदु बाबू से कहा—'देखो! पहले तो तुम भगवान का नाम लिया करते थे, परन्तु अब उन्हें पुकारते समय इतने अन्यमनस्क क्यों हो जाते हो?' इस पर यदु बाबू ने कहा—'जानते हो छोटे भट्टाचार्य!

तुम्हें देखने के वाद से मुझे भगवान को पुकारने की इच्छा नहीं होती। देखता हूँ कि उनका (भगवान) का नाम लेने पर संसार की चीजों में मन नहीं लगता, इसीलिए उनसे अन्यमनस्क होकर मुझे विषय सम्पत्ति की देखभाल करनी पड़ती है।' इस पर ठाकुर ने क्या कहा जानते हो?—'इतना अधिक उचित नहीं है यदु! कोल्हू का वैल होकर क्यों घूमते रहना चाहते हो?' यदु वावू बोले—'कर्मफल तो मानते हो न छोटे भट्टाचार्य?' एक दिन यदु मल्लिक की माँ ठाकुर को घर के भीतर भोजन करा रही थीं, वड़ी देर होती देखकर देवेन वावू (एन्टाली के देवेन्द्रनाथ मजुमदार) वेचैन हो उठे। उसी समय हम सभी को खिलाने के लिए घर के भीतर ले जाया गया। खाकर उठने के वाद देवेन वावू उनके (ठाकुर के) पैर पकड़कर रोने लगे। मेरी तो समझ में कुछ भी नहीं आया। वाद में एक दिन मैंने देवेन वावू से पूछा। देवेन वावू ने कहा—'देखो! मेरे मन में वड़ा खराव विचार आया था। मैंने ठाकुर पर सन्देह किया था। परन्तु जाते समय देखा कि यदु की माँ ठाकुर को खिला रही हैं और रोती जा रही हैं। इससे समझ में आया कि उनका वात्सल्य भाव है। और मैंने दूसरा ही कुछ सोच लिया था। ठाकुर अन्तर्यामी हैं न! इसीलिए मेरा सन्देह दूर कर दिया'"

(१८८४ ई०)।··· "एक दिन हृदय (ठाकुर के भानजे) उनसे मिलने आये थे। ठाकुर उनके साथ भेंट करने यदु मल्लिक के उद्यान में गये थे। ठाकुर कभी कभी यदु मल्लिक के उद्यान में टहलने को जाते थे। दक्षिणेश्वर में भीड़-भाड़ होने पर वे वीच वीच में राखाल भाई, लोरेन भाई और भवनाथ भाई का साथ लेकर वहाँ चले जाते थे। सुना है कि लोरेन भाई को उन्होंने वहीं पर सबकुछ दिखाया था!···· यदु वावू उद्यान में आने पर उन्हें बुला भेजते थे और वैठे-वैठे उनका भजन सुनते थे। ठाकुर को भजन सुनवाने के लिए वे एक आदमी को ले आते थे। उसका गला वड़ा मीठा था, ठाकुर उसके गाने की बड़ी प्रशंसा करते थे। एक दिन उन्होंने ठाकुर को (गिरीश वावू के) चैतन्य लीला के गाने सुनाये। इसी से तो उनके मन में थियेटर देखने की इच्छा हुई।"

यहीं पर यदु वावू का प्रसंग समाप्त होता है। (१८८२-८३-८४ ई०) "दुर्गापूजा के समय वे (ठाकुर) भक्तों के घर जाया करते थे। सप्तमी के दिन वे राम वावू और सुरेश वावू के घर जाते थे। अष्टमी के दिन वे केशव वावू, अधर वावू, राम वावू और अन्यान्य भक्तों के घर जाते थे। नवमी के दिन वे दक्षिणेश्वर में ही रहते थे और शायद ही कहीं जाते थे। एक वार रात को नौ-दस वजे अधर वावू के घर गये थे। दशमी के दिन वे नवकुमार चटर्जी (जो दक्षिणेश्वर के ही निवासी थे) के घर जाते थे। एकादशी के दिन सभी भक्त दक्षिणेश्वर को आते थे।·· सुना है कि मथुर वावू जितने दिन जीवित थे वे पूजा के समय उनके घर भी जाते थे। मथुर वावू के देहावसान के वाद से वे पूजा के दिनों में उनके यहाँ नहीं जाते थे।···तुम्हारे उए (कोजागरी) लक्ष्मी पूजा के दिन केशव वावू दक्षिणेश्वर आते थे। उनके साथ अनेक भक्त आया करते थे।··· एक वार उन्होंने केशव वावू को नारियल, मुरमुरे और ताड़ के भीतर एक तरह का कुछ होता है, वही खिलाया था। सबके साथ केशव वावू ने वह सव खाया। इतने प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, पर थोड़ा भी अभिमान नहीं दिखाया।··· काली पूजा के दिन माँ के मन्दिर में वड़ी रोशनी की जाती थी, पोश्ते के घाट को भी आलोकित रखा जाता था। उस दिन रामलाल (दादा) पूजा में वैठने के पूर्व ठाकुर की अनुमति ले जाते थे; उस दिन वे अपने कमरे में ही वैठे रहते। रात में माँ का दर्शन करने जाते। रात भर नौवत वजती थी।··· एक दिन शनिवार को काली पूजा पड़ी थी। ठाकुर ने हम लोगों से कहा, 'अरे, आज की रात खूव जप करना। ऐसे दिन जप करने से जल्दी सिद्ध हुआ जा सकता है।' उस रात ठाकुर ने हममें से किसी को सोने नहीं दिया, काफी रात तक स्वयं ही भजन गाते रहे।··· जगद्धात्री पूजा के दिन वे हम लोगों का साथ लेकर मदनमोहन वावू के घर

जाते थे। वहाँ पर एक बार एक व्यक्ति ने ऐसा खोल (एक तरह का ढोल) बजाया कि उसका वादन सुनकर ठाकुर को समाधि लग गयी। थी।"

(१८८३ ई०)····"जानते हो! एक बार वे केशव बाबू को देखने गये थे। केशव बाबू तब बीमार थे। उनके आने का सम्वाद पाकर वे नीचे उतर आये। ठाकुर ने उनकी बीमारी देखकर कहा था -'इस बार माँ की इच्छा समझ नहीं सका।' तदुपरांत तीन-चार महीने के भीतर ही केशव बाबू ने देहत्याग कर दिया।·· वे एक बार और भी बीमार पड़े थे। ठाकुर ने उनके लिए सिद्धेश्वरी देवी के निकट नारियल और चीनी की मनौती की थी। केशव बाबू के स्वस्थ हो जाने पर ठाकुर ने सिद्धेश्वरी को पूजा भेजी थी।··· विजय बाबू और केशव बाबू के दल के लोग एक बार मणि मल्लिक के घर गये थे। वहाँ पर उन्होंने केशव बाबू की बीमारी की बात सुनी। केशव बाबू की बीमारी की बात सुनकर ठाकुर इतने दुःखी हुए थे कि उस दिन उन्होंने वहाँ के नाच-गान में भाग नहीं लिया। जानते हो! केशव बाबू के प्रति ठाकुर का बड़ा प्रेम था। वे ठाकुर के समक्ष हाथ जोड़े बैठे रहते थे। ठाकुर की बातों पर उनका बड़ा विश्वास था।"

सुनने में आया है कि वे (ठाकुर) सेवक लाटू को साथ लेकर भक्त जयगोपाल सेन के घर गये थे—ठीक कह नहीं सकता कि किस वर्ष यह घटना हुई। जयगोपाल बाबू के बारे में परवर्ती काल में लाटू महाराज ने विशेष कुछ कहा नहीं। केवल इतना ही सुना है कि ग्रीष्मकाल में जयगोपाल बाबू बीच-बीच में बरफ डाला हुआ तरबूजे का शरबत, बेल का शरबत, कुल्फी आदि अपने आदमी के हाथों दक्षिणेश्वर भेज दिया करते थे। जयगोपाल बाबू इतनी अधिक मात्रा में शरबत भेजते कि दक्षिणेश्वर में सभी भक्तों को देने के बाद भी बच रहता था। उसे ठाकुर दक्षिणेश्वर के भक्त नवकुमार चटर्जी के घर भेज देते थे। (क्रमशः)

संत प्रसंग

पराजय

प्रस्तुति : सुरेश कुमार प्रशांत

उन दिनों प्रख्यात विद्वान केशवचन्द्र सेन अपनी ओजस्वी वक्तृता एवं प्रखर तर्कशक्ति के कारण बंगाल के युवकों में अत्यंत लोकप्रिय हो चुके थे। यूरोपीय रहन-सहन एवं जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर वे पूर्णतः नास्तिक हो चुके थे। उन्हीं दिनों एक साधना-स्थल के रूप में दक्षिणेश्वर का मन्दिर अपनी सुगंध बिखेर रहा था। केशवचन्द्र भी रामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध में सुन चुके थे और उन्होंने रामकृष्ण से मिलना निश्चित किया।

रामकृष्ण और केशवचन्द्र के मिलने की बात आग की तरह पूरे शहर में फैल गयी। सबके मन में गहरी उत्सुकता थी कि देखें, क्या होता है क्योंकि केशवचन्द्र थे अधित विद्वान और रामकृष्ण एकदम अपढ़-गंवार। सब सोचते—रामकृष्ण भला उनसे क्या बात कर सकेंगे! रामकृष्ण के कुछ शिष्य भी घबड़ा गये थे। एक ने कहा—महाराज, केशवचन्द्र से शास्त्रार्थ करने हेतु आपको पहले से तैयारी करनी चाहिए। पर रामकृष्ण को जैसे इन सब बातों की कोई जानकारी ही नहीं थी।

नियत समय पर कलकत्ता के असंख्य प्रबुद्ध नर-नारी दक्षिणेश्वर पहुँच गये। केशवचन्द्र आये। वे पूर्ण तैयार थे कि रामकृष्ण से क्या पूछना है तथा किस-किस संभावित

प्रश्न का क्या-क्या उत्तर देना है।

आते ही केशवचन्द्र ने पूछा—बताइए, "क्या ईश्वर हैं ?"

रामकृष्ण ने कहा—"पहले तुम्हीं बताओ।" तो केशवचन्द्र धुआंधार दलीलें देने लगे कि ईश्वर नहीं है। एक से एक ठोस तर्क और प्रमाण देते जाते और रामकृष्ण प्रसन्नता से उछलने लगते। फिर उठकर कई बार उन्होंने केशवचन्द्र को गले लगा लिया, खुद लिपट—लिपट जाते।

केशवचन्द्र घबड़ाये—यह साधु मेरे तर्कों का जबाब क्यों नहीं दे रहा है, पागल तो नहीं है, कुछ लोग इसे पगला बाबा कहते हैं। वह सच तो नहीं है, मैं इसके विरुद्ध जितना ही बोलता हूँ, उतना ही यह खुश होता जाता है, वाह-वाह करता है। क्या अर्थ है ?

उधर केशवचन्द्र के तर्कों एवं अकाट्य प्रमाणों से रामकृष्ण के शिष्य घबड़ाए जाते थे, कि देखें, अंत क्या होता है।

मगर, थोड़ी ही देर बाद केशवचन्द्र के तर्क चुकने लगे वे परेशान हो गये और अंततः पूछ ही बैठे—"मैं तो आपके विरोध में खड़ा हूँ और आप स्नेह से लिपटे जाते हैं ? आखिर बात क्या है ? आप मेरे तर्कों को खंडित क्यों नहीं करते ?

रामकृष्ण ने कहा—बस, इसी विरोध के कारण तो मैं बार-बार ईश्वर को धन्यवाद कर रहा हूँ। "धन्यवाद क्यों कर ? मैं तो कह रहा हूँ कि ईश्वर है ही नहीं"—केशव बोले।

"बस-बस, यही तो कारण है। इतनी प्रतिभा, इतनी तर्क-क्षमता, ऐसे प्रखर उज्ज्वल विचार यह सब मेरे लिए ईश्वर के प्रमाण हैं। मुझे एक-एक पत्ते में, तितली के उड़ने में, फूल के चटखने में, एक दूब की हरियाली में, चांद के निकलने में—अणु-अणु में ईश्वर की सत्ता के दर्शन होते हैं। इसी तरह मैं जब तुम्हारी ओजस्वी वक्तृता और प्रबल तर्कणा को देखता हूँ तो मुझे उसमें भी ईश्वर के दर्शन होते हैं बल्कि प्रत्येक शब्द, प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक ध्वनि में मुझे ईश्वर के अस्तित्व का अभास होता है, तुम में ही ईश्वर के दर्शन होते हैं। तुम प्रमाण देते हो कि ईश्वर नहीं है और मेरे लिए तुम्ही ईश्वर हो गये हो। मानव की प्रतिभा इतनी विकसित हो सकती है तुम्हारे भीतर, तो मेरे लिए तुम्हीं ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण हो गये। अब मैं क्या करूँ ? इसीलिए बार-बार तुम्हें उठाकर गले लगाता हूँ। धन्य हो प्रभु !!"

केशवचन्द्र उदास हो गये। धीरे-धीरे उठे। लौटने लगे तो रामकृष्ण बोले—"जाओ, मगर, एक बात याद रखना। जिसके भीतर इतनी विलक्षण प्रतिभा हो, वह ईश्वर से ज्यादा दिन दूर नहीं रह सकता। इसे स्मरण रखना।"

उस रात केशवचन्द्र ने घर जाकर अपनी डायरी में लिखा—"आज मैं एक अपढ़-गंवार साधु से हार गया, क्योंकि वह लड़ा ही नहीं।"

वस्तुतः, कोई लड़ता तभी है जब उसे हारने का भय होता है। जो लड़ता है, कभी जीतता नहीं। जो हारने से डरता नहीं, खुद को जीतने की प्रसन्नता दे देता है।

×

कोई भी कर्त्तव्य तुच्छ नहीं है। क्या काम करता है इससे नहीं बल्कि किस भाव से करता है, इससे आदमी की पहचान होनी चाहिए। एक मोची जो सुन्दर मजबूत जूते स्वल्पकाल में तैयार कर सकता है, वह अच्छा है बनिस्बत एक प्राध्यापक के जो दिन भर फजूल बकता रहता है। सब कर्त्तव्य पवित्र हैं और कर्त्तव्य-निष्ठा प्रभु-पूजन का एक उत्तम प्रकार है।

—स्वामी विवेकानन्द

रिपोर्ट

रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, मद्रास

वार्षिक प्रतिवेदन

(अप्रैल १९८६ से मार्च १९८७ तक)

प्रस्तुति : **स्वामी वीतभयानन्द**

१८९९ ई० में मद्रास में रामकृष्ण मठ की स्थापना के बाद श्रीमत् स्वामी रामकृष्णानन्दजी महाराज (श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य) ने वहाँ के लोगों की जरूरत को ध्यान में रखते हुए, एक अनाथ आश्रम खोलने की बात सोची, जहाँ गुरुकुल प्रणाली के आधार पर अनाथ एवं निःसहाय बच्चों के शिक्षण की व्यवस्था हो ताकि वे आत्मनिर्भर होकर समाज के उपयोगी सदस्य बन सकें। १७ फरवरी, १९०५ को केशव पेरुमल साउथ मड़ा स्ट्रीट, मयलापुर के एक छोटे से भवन में 'होम' का उद्घाटन किया गया। अपने स्थायी स्थल ९२, सर पी० एस० शिव स्वामी सलाई, मयलापुर में इसका स्थानान्तरण १० मई, १९२१ ई० को किया गया। तब से यह 'स्टूडेन्ट्स होम' अनेक प्रकार से अनाथ एवं निःसहाय बालकों के समुचित विकास के लिए अनवरत कार्य कर रहा है।

वर्तमान व्यवस्था के अनुसार इसके ६ विभाग है :—

(१) कॉलेजियट विभाग: इसमें विभिन्न कॉलेजों में अध्ययनरत १९ छात्रों के रहने तथा खाने की व्यवस्था है।

(२) तकनीकी विभाग : त्रिवर्षीय डिप्लोमा कोर्स के लिए होम की ओर से एक पूर्ण आवासीय तकनीकी संस्थान है जिसकी वर्तमान क्षमता १२० छात्रों की है। संस्थान की तरफ से पी० डी० कोर्स तथा ए० एम० आई० ई० क्लास की भी व्यवस्था है जिसकी क्षमता ४५ छात्रों की है।

(३)माध्यमिक विभाग : लड़कों के लिए एक आवासीय उच्च विद्यालय चलाया जाता है जिसकी वर्तमान क्षमता १४७ छात्रों की है।

(४) प्राथमिक विभाग : दिवा छात्रों के लिए ३२० छात्रों की क्षमता वाला रामकृष्ण सेंटेनटरी प्राथमिक विद्यालय चलाया जाता है।

(५) उच्च प्राथमिक विभाग ; 'होम' मलयानकरनाई में एक मिड्ल स्कूल चलता है जिसमें ३७९ छात्रों के लिए व्यवस्था है तथा स्कूल से जुड़े छात्रावास में ३९ छात्रों के रहने की व्यवस्था है।

(६) मलियान करनाई की कृषि भू सम्पत्ति : मलियान करनाई गाँव में मिशन की कुछ कृषियोग्य भूमि तथा कुछ मवेशी हैं।

इस वर्ष दो चरणों में ९ अक्टूबर, १९८६ से १२ अक्टूबर, १९८६ तथा दिसम्बर १९८६ से १ मार्च, १९८७ तक भगवान श्रीरामकृष्ण देव तथा रामकृष्ण-भावान्दोलन की १५० वीं जयंती मनायी गयी। इसके अन्तर्गत आम सभा, विचारगोष्ठी, जुलूस, सांस्कृतिक-कार्यक्रम आदि के आयोजन हुए थे। छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए 'होम' की तरफ से प्रार्थना, धार्मिक कक्षा, समाज सेवा प्रशिक्षण, बागवानी, हिन्दी एवं संस्कृत की कक्षाएँ, शारीरिक प्रशिक्षण, पर्यटन आदि की व्यवस्था है।

पाकशाला एवं पुस्तकालय भवन का नवनिर्माण :

अति आवश्यक समझकर लगभग ३० लाख रु० की लागत पर एक बड़ी पाकशाला एवं पुस्तकालय भवन के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया गया है। अपने देश तथा विदेश के सदस्य एवं लोक हितैषी मित्रों, शुभचिन्तकों तथा विशेषकर 'होम' के पुराने छात्रों से हमारा अनुरोध है कि इस पुण्यकार्य में उदारतापूर्वक दान देकर आश्रम के कार्यों में सहयोग करें।
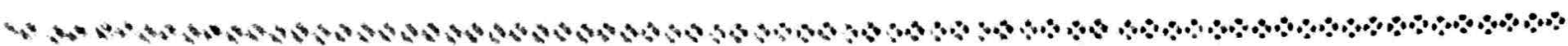
I love you all because you are the children of gods, and because you are the children of the glorious forefathers. How then can I curse you? Never. All blessings be upon you. (iii-227)

SWAMI VIVEKANANDA
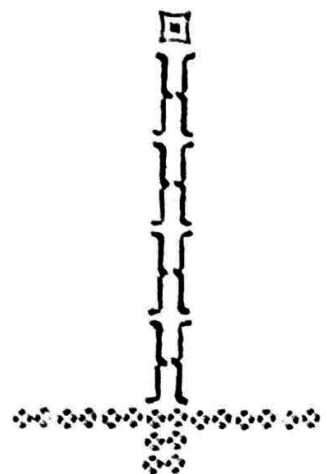
बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
यौवन
दिमागी ताकत
विकास
बलवर्द्धक
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१
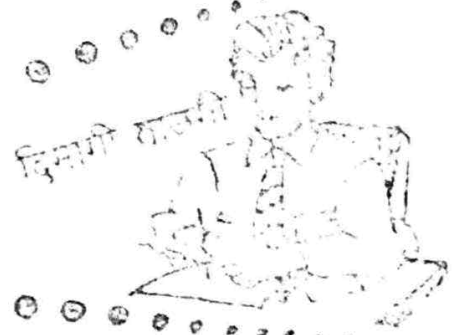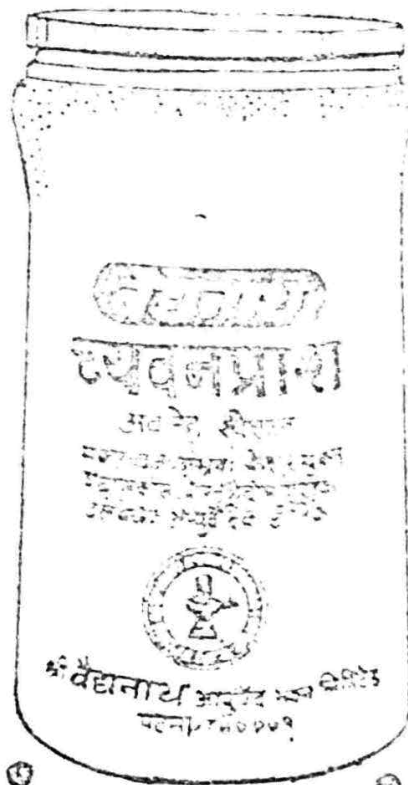
अंक 11

डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी०—१४-८३

विवेक वाणी

पुरुषकार

भय क्या है ? मन में अनन्यता आने पर मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, इस जन्म में ही आत्मानुभूति हो जायगी ! परन्तु पुरुषकार चाहिए। पुरुषकार क्या है जानता है ? आत्मज्ञान प्राप्त करके ही रहूँगा; इसमें बाधा-विपत्ति सामने आयगी उस पर अवश्य ही विजय प्राप्त करूँगा—इस प्रकार के दृढ़ संकल्प का नाम ही पुरुषकार है। माँ, बाप भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र मरते हैं तो मरें, यह देह रहे तो रहे, न रहे तो न सही, मैं किसी भी तरह पीछे न देखूँगा। जब तक आत्मदर्शन नहीं होता तब तक इस प्रकार सभी विषयों का उपेक्षा कर एक मन से अपने उद्देश्य की ओर अग्रतर होने की चेष्टा करने का नाम है पुरुषकार; नहीं तो दूसरे पुरुषकार तो पशु पक्षी भी कर रहे हैं। मनुष्य ने इस देह को प्राप्त किया है केवल इसी आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए; संसार में सभी लोग जिस रास्ते से जा रहे हैं, क्या तू भी उसी स्रोत में बहकर चला जायगा ? तो फिर तेरे पुरुषकार का मूल्य क्या है ? सब लोग तो मरने बैठे हैं पर तू तो मृत्यु को जीतने आया है। महावीर की तरह अग्रसर हो जा। किसी की परवाह न कर, कितने दिनों के लिए है यह शरीर ? कितने दिनों के लिए हैं ये सुख दुःख ? यदि मानव शरीर को ही प्राप्त किया है, तो भीतर की आत्मा को ही जगा और बोल—"मैंने अभयपद प्राप्त कर लिया है।" बोल—" मैं वही आत्मा हूँ, जिसमें मेरा क्षुद्र 'अहंभाव' लीन हो गया है।" इसी तरह सिद्ध बन जा; उसके बाद जितने दिन यह देह रहे, उतने दिन दूसरों को यह महावीर्य पद अभयवाणी सुना—'तत्वमसि,' 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्त वरान् निबोधत'। यह होने पर तब जानूँगा कि तू वास्तव में एक सच्चा 'पूर्वी बंगाली' है।

—स्वामी विवेकानन्द

(वि० सा० खंड ६ पृष्ठ २९० ९१)

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित